ब्रह्मविद्या-रहस्य

—शिवानन्द

ब्रह्मविद्या-रहस्य
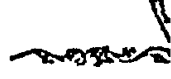
लेखक
तत्वदर्शी श्री शिवानन्द जी

प्रकाशक
छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग

प्रथम संस्करण 1000 } जनवरी १९४१ { मूल्य १)

प्रकाशक
श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटरः—छात्रहितकारी पुस्तकमाला,
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक
श्री रघुनाथप्रसाद वर्मा
नागरी प्रेस, दारागंज,
प्रयाग

प्रस्तावना

अपने श्री सद्‌गुरुदेव—समाधिस्थ श्री श्री १०८ प्रभुराज परब्रह्मस्वरुप नारायणानन्द नृसिंह सरस्वती, स्वामी श्रीयोगाश्रम धाम लोदीपुर, जिला मुँगेर बिहार प्रान्त—के चरण-कमलों का ध्यान करके मैं प्रस्तावना प्रारम्भ करता हूँ।

प्रथम मंगलाचरण उस परब्रह्म सच्चिदानन्द का करता हूँ जो सदा एकरस परिपूर्ण रहता है तथा जिसने तटस्थ लक्षण से अधिष्ठित रह कर 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म-सत्ता द्वारा समष्टि और व्यष्टि तथा स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीरमें अनन्त रूप, अनन्त गुण, अनन्त स्वभाव, अनन्त शक्ति, और कर्म परिवर्तन के धर्म से युक्त करके धारण किया है।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"—इस श्रुति के अनुसार सब तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकों का यही तात्पर्य है कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द, अर्थात् आत्मा और अखिल ब्रह्माण्ड में भेद नहीं है। यही तात्पर्य इस पुस्तक का भी है।

श्रीमद्भगवद्‌गीता के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों में किसी पुस्तक का आधार केवल वेदान्त है, और किसी का आधार वेदान्त और विज्ञान है। किन्तु इस पुस्तक का अधिष्ठान अनुभवगम्य ज्ञान और आधार ब्रह्म विद्या, अध्यात्मविद्या, वेदान्त और विज्ञान है; इस कारण इस पुस्तक की शैली सब पुस्तकों से निराली है।

"यह पुस्तक जैसे ही भक्ति और ज्ञान रस से परिपूर्ण है, वैसे ही साहित्य तथा पद और काव्य रस से अपूर्ण है, इसलिए जो लोग साहित्य तथा पद और काव्यरस के भूखे हैं, उनको इस पुस्तक द्वारा तृप्ति नहीं हो सकती है।

जिज्ञासु को चाहिए कि पहले मस्तिष्क-गत व ज्ञान होने के लिए पुरुषार्थ करे, उसके पश्चात् हृदयगत ज्ञान निमित्त पुरुषार्थ करे, तत्पश्चात् अनुभवगम्य ज्ञान के साक्षात्कार हेतु चेष्टा करे।

(१) मस्तिष्कगत ज्ञान उस ज्ञान को कहते हैं, जिसे जिज्ञासु किसी से सुनकर अथवा पुस्तक पढ़कर बार २ मनन-द्वारा ध्यान और लक्ष्य में ला सके।

(२) हृदयगत ज्ञान उस ज्ञान को कहते हैं, जो पहले मस्तिष्क गत हो कर बाद को बार २ मनन और निदिध्यासन करने से संशय-रहित और निश्चल हो जाता है, समाधि के अभ्यास द्वारा प्रत्यक्ष हो जाता है।

(३) अनुभवगम्य ज्ञान उसको कहते हैं जो संशय-रहित और निश्चल होकर समाधि के अभ्यास-द्वारा प्रत्यक्ष हो जाता है।

जिज्ञासु को चाहिए कि उक्त नियम के अनुसार पुरुषार्थ करके अनुभवगम्य ज्ञान प्राप्त करे। विषयों की आसक्ति, प्रीति और "इदं, अहं, मम, त्वं" अर्थात् "यह, मैं, मेरा, तुम" आदि संस्कारों के त्याग के बिना अनुभवगम्य ज्ञान का साक्षात्कार नहीं हो सकता तथा मस्तिष्कगत ज्ञान और हृदयगत ज्ञान के बिना विषयों की आसक्ति, प्रीति और "इदं, अहं, मम, त्वं" का त्याग नहीं हो सकता है। इसलिए जिज्ञासु को चाहिए कि प्रथम पुरुपार्थ करके मस्तिष्कगत ज्ञान और हृदयगत ज्ञान प्राप्त करे, तत्पश्चात् अनुभवगम्य ज्ञान का साक्षात्कार होने के लिए पुरुषार्थ करे।

निवेदक

शिवानन्द

दो शब्द

तत्वदर्शी श्रीशिवानन्दकृत 'ब्रह्मविद्या-रहस्य' नामक इस ग्रंथ का मैंने अवलोकन किया है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, मैं यही कह सकता हूँ कि वेदान्त जैसे गूढ़ विषय को इतने सरल और सुबोध रूप में हृदयंगम कराने वाली कोई भी पुस्तक अब तक हिन्दी में नहीं थी: इस अभाव की पूर्त्ति कर के तत्त्वदर्शी महोदय ने निस्सन्देह अगणित हिन्दी पाठकों को उपकृत किया है।

हमारी वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली में वेदान्त आदिके पठन-पाठन की कोई व्यवस्था न होनेके कारण वर्त्तमान समय में शिक्षित वर्ग के भीतर भ्रम, मति-चांचल्य, पथ-भ्रष्टता, अविवेक, द्वेष, लोभ, मद, मात्सर्य्य आदि का जितना प्रसार हो रहा है उतना अशिक्षित वर्ग के भीतर भी देखने में नहीं आता। इस परिस्थिति का परिणाम यह हो रहा है कि विकार ग्रस्त स्वार्थ सिद्धि की वासना हमारे सार्वजनिक जीवन की प्रेरक शक्ति बन गयी है और चारों ओर निरानन्द का विस्तार कर रही है। 'ब्रह्मविद्या-रहस्य' जैसी पुस्तकों के प्रचार और पठन-पाठन की वृद्धि से हमारे मानस-रोग का, एक बहुत बड़ी सीमा तक, उपचार हो सकता है और इस रूप में यह पुस्तक उन लोगों द्वारा, जो संस्कृत भाषा से परिचित न होने के कारण उसके विशाल ज्ञान-विज्ञानमय साहित्य का

उपयोग नहीं कर सकते, एक अचूक गुणकारी औषधि के रूप में गृहीत होगी।

तत्त्वदर्शी जी ने अपने प्रतिपाद्य विषय की जिस प्रकार व्याख्या की है, जिस ढंग से उसे समझाया है, वह अपूर्व है। उनकी इस शैली से एक ओर तो उनके संशय-मुक्त अनुभव का पता लगता है, दूसरी ओर पाठक के लिए एक कठिन और दुरूह विषय भी करतलामलकवत् हो गया है। इसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हूँ।

हिन्दी पाठकों के उपयोगार्थ ऐसी उत्तम पुस्तक प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक महोदय भी साधुवाद के पात्र हैं।

गिरिजादत्त शुक्ल "गिरीश"

प्रकरण-सूची

ब्रह्मविद्या-रहस्य

प्रथम प्रकरण

अंक १—माया तथा विश्व होने के पूर्व केवल शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा था।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में ब्रह्मसत्ता अनिर्वचनीय है। उसके प्रभाव से आदि में शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से मूलमाया तथा मूलाज्ञान अर्थात् पराप्रकृति उत्पन्न हुई; पराप्रकृति से अपरा प्रकृति (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी) को जन्म मिला और अपराप्रकृति से विकृति रूप अनन्त पदार्थ उत्पन्न हुए। सृष्टि के अन्त में विकृतिरूप अनन्त पदार्थ अपरा प्रकृति में, अपराप्रकृति परा प्रकृति में, तथा परा प्रकृति शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में लीन हो जायगी। इसी तात्पर्य को दूसरी शैली से अवधूतगीता के दूसरे अध्याय के ३४ वें श्लोक में कहा है :—

यस्य स्वरूपात्सचराचरं जगदु-
त्पद्यते तिष्ठति लीयतेऽपिवा।
पयोविकारादिव फेनबुद्बुदा-
स्तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ।३४।

पदच्छेद

यस्य, स्वरूपात्, सचराचरम्, जगत उत्पद्यते, तिष्ठति, लीयते, अपि, वा, पयोविकारात्, इव, फेनबुद्बुदाः तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थ

यस्य=जिस आत्मा के	पयोविकारात=जल के विकार से
स्वरूपात=स्वरूप से	इव=निश्चय पूर्वक
सचराचरम्=चरअचरके सहित	फेनबुद्बुदाः=फेन के बुद्बुदे ही
जगत्=संसार	तम्=उस
उत्पद्यते=उत्पन्न होता है	ईशम्=ईश्वर
तिष्ठति=स्थिर हो जाता है	आत्मानम्=आत्मा
लीयते=लय हो जाता है	शाश्वतम्=नित्यको
अपि वा=निश्चय करके	उपैति=विद्वान् प्राप्त होता है

अनिर्वचनीय ब्रह्मसत्ता का प्रभाव प्रत्यक्ष अनुभव से सिद्ध है। हम देखते हैं कि अपरा प्रकृतिरूप पृथ्वी से विकृतिरूप अनन्त पदार्थ अनेक प्रकार के अन्न, अनेक प्रकारके फल और मेवे, अनेक प्रकार के फूल, अनेक प्रकारकी वनस्पतियाँ, अनेक प्रकार को गाछवृक्ष उत्पन्न होते हैं, और क्रम २ से वे सब (विकृति

रूप अनन्त पदर्थ) अपरा प्रकृतिरूप पृथ्वी में लीन हो जाते हैं।

अंक २—शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सदा एक रस परि-पूर्ण रहता हुआ, ब्रह्मसत्ता के प्रभाव से मूलमाया तथा मूलाज्ञान हुआ। माया को शुद्ध सतोगुण और अज्ञान को मलीन सतो-गुण भी कहते हैं।

तमोगुण, रजोगुण, और सतोगुण को दबाकर अपने अधीन रखने की शक्ति को माया अर्थात् शुद्ध सतोगुण कहते हैं। जब तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण तीनों का प्रभाव हो और तमोगुण के बलवान होने पर रजोगुण और सतोगुण दब जावे, रजोगुणके बलवान होने पर तमोगुण और सतोगुण दब जावे, तथा सतो-गुणके बलवान होने पर तमोगुण और रजोगुण दब जावे, तब इस परिस्थिति को अज्ञान अर्थात् मलीन सतोगुण कहते हैं।

यह प्रत्यक्ष अनुभव से सिद्ध है कि प्रत्येक प्राणी में त्रिगुणा-त्मक अर्थात् तमोगुण, रजोगुण, सतोगुणमय अज्ञान हृदयगत है; तमोगुणी प्राणी का रजोगुण, सतोगुण दबा रहता है, रजो-गुणी प्राणी का तमोगुण, सतोगुण दबा रहता है और सतोगुणी प्राणी का तमोगुण, रजोगुण दबा रहता है। और, कभी २ ऐसा भी अनुभव होता है कि, जिस समय तमोगुण का बल अधिक होता है उस समय रजोगुण, सतोगुण दब जाता है; जिस समय रजोगुण का बल अधिक होता है, उस समय तमोगुण, सतोगुण दब जाता है तथा जिस समय सतोगुण का बल अधिक

होता है उस समय तमोगुण, रजोगुण दब जाता है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भिन्न भिन्न प्राणियों में यह त्रिगुणात्मक प्रकृति भिन्न भिन्न मात्रा में होती है।

इस बात को यों समझिए कि हमारे देश में पैंतीस करोड़ मनुष्य हैं, इन सब को एकत्र किया जाय तो हर एक प्राणी के के मुखड़े का आकार अर्थात् चेहरा पृथक् २ प्रतीत होंगे; एक दूसरे से किसी के मुखड़े का आकार अर्थात् चेहरा नहीं मिल सकता है; कुछ न कुछ अवश्य अन्तर रहेगा। इसी प्रकार चींटी से ब्रह्म देव तक स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर की उपाधि रहते हुए तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण सम्बन्धी जो अज्ञान हरएक प्राणी के हृदयगत है, उसमें तमोगुण, रजोगुण, सतो-गुण का अंश हर एक प्राणी में कम अधिक होने के कारण एक दूसरे से परा प्रकृतिरूप अज्ञान की भिन्नता है।

किसी प्राणी में त्रिगुणात्मक अज्ञान का तमोगुण का अंश बहुत अधिक, रजोगुण का अंश तमोगुण की अपेक्षा कुछ कम, और सतोगुण का अंश उससे भी कम; किसी प्राणी में तमोगुण का अंश बहुत कम, रजोगुण का अंश तमोगुण से अधिक और सतोगुण का अंश रजोगुण से कम; और किसी प्राणी में सतोगुण का अंश बहुत अधिक, रजो-गुण का अंश सतोगुण से कुछ कम, और तमोगण का रजोगुण से कुछ कम होता है। इस कारण असंख्य जीव व्यक्तिगत प्राणी परिछन्न हैं। इसी प्रकार आदि स्थूल, सूक्ष्म

सृष्टि के पूर्व और माया तथा अज्ञान होने के पश्चात् केवल शरीर की उपाधि रख कर व्यक्तिगत प्राणी परिच्छन्न थे। इसी कारण ईश्वर आदि सृष्टिमें जीवों के त्रिगुणात्मक अज्ञान का अंश कम अधिक रहने के अनुसार अनेक योनियाँ हुईं और सृष्टि का नियम इस प्रकार हुआ कि उसमें हरएक प्राणी को एक समय मनुष्य-योनि प्राप्त हो तथा आत्मोन्नति का अवसर मिले।

अंक ३—शुद्ध सतोगुण में शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का जो चिदाभास है वह और शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द दोनों के संयोग को परमात्मा कहते हैं; केवल चिदाभास को ईश्वर कहते हैं। शुद्ध सतोगुण उपाधि के कारण चिदाभास अर्थात् ईश्वर नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञादि लक्षण-सम्पन्न, सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करनेवाला, और जीवों के पाप, पुण्य कर्म के फल का नियत करने वाला है। किन्तु शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द असंग, अकर्त्ता, अभोक्ता सदा एक रस है। शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द को ब्रह्म अथवा चेतन भी कहते हैं।

मलीन सतोगुण में शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का जो चिदाभास है वह और शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द दोनों के संयोग को जीवात्मा कहते हैं और केवल चिदाभास को जीव कहते हैं। मलीन सतोगुण उपाधि के कारण जीव बद्ध है और अल्पशक्तिमान, अल्पज्ञादि है। किन्तु शुद्ध चेतन परब्रह्म

सच्चिदानन्द जैसा ऊपर कहा गया है असंग, अकर्ता, अभोक्ता है; शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द को कूटस्थ तथा आत्मा भी कहते हैं।

जिस प्रकार केवल आकाश निरुपाधि होनेके कारण महाकाश कहलाता है, अर्थात मेघ की उपाधि के कारण मेघाकाश कहलाता है, जल की उपाधि के कारण जलाकाश कहलाता है, किन्तु मेघ और जल की उपाधि से रहित होने पर अपने आप केवल आकाश है, वैसे ही केवल शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द उपाधि हीन, होनेके कारण आत्मा कहलाता है। मूलमाया की उपाधि के कारण परमात्मा कहलाता है और मूलज्ञान की उपाधि के कारण जीवात्मा कहलाता है, किन्तु मूलमाया और मूलज्ञान की उपाधि से निवृत्त होने पर अपने आप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द रह जाता है।

चिदाभास और शुद्ध सतोगुण के परस्पर सम्बन्ध से परमात्मा के अंश चिदाभास अर्थात् ईश्वर के लिए कर्ता, करण, कर्म; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; भोक्ता, भोग, भोग्य; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य आदि परिस्थितियाँ अपने आप स्वयंसिद्ध हैं। चिदाभास कर्ता, ज्ञाता, भोक्ता और द्रष्टा है। माया तथा मायाकृत करण, ज्ञान, भोग और दर्शन है।

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना आदिक कर्म है; स्वरूपानन्द तथा ब्रह्मानन्द और करुणारस भोग्य है; ब्रह्म, सब

विद्या और सृष्टि का सब पदार्थ ज्ञेय है; 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म से अभिन्न दृश्यमान दृश्य है।

कर्ता, करण, कर्म के सम्बन्ध से ईश्वर सर्वशक्तिमान है; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय के सम्बन्ध से ईश्वर सर्वज्ञादि विशेषता सम्पन्न है; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य के सम्बन्ध से ईश्वर अन्तर्यामी है; भोक्ता, भोग, भोग्य के सम्बन्ध से ईश्वर करुणासागर और दयालु है।

ईश्वर की सर्वशक्तिमता, सर्वज्ञता, अन्तर्यामिता, करुणा-सागरता तथा दयालुता आदिक स्थूल, सूक्ष्म सृष्टि का मुख्य हेतु है।

स्थूल, सूक्ष्म सृष्टि की उत्पत्ति में सहायक स्वरूप अनेक कारण हैं। वे हैं—(१) मूलकारण (२) उपादान कारण (३) निमित्त कारण और (४) साधारण कारण।

मूल कारण उसको कहते हैं जो स्थूल, सूक्ष्म सृष्टि के उपादान कारण और कार्य में अधिष्ठान रूप से ओतप्रोत हो। जिस प्रकार कपड़ा, भूषण, बर्फ में अधिष्ठान तन्तु, सोना और पानी ओतप्रोत है, उसी प्रकार उपादान कारण, त्रिगुणात्मक अज्ञान और स्थूल, सूक्ष्म कार्य में 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता ओतप्रोत है, इसलिए 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता मूलकारण है। (देखो अस्ति भाति प्रिय ब्रह्म सत्ता और अधिष्ठान प्रकरण सं० ८ में)।

उपादान कारण उस कारण को कहते हैं जिसका भाव कार्य में भी हो। जैसे घड़ा का उपादान कारण मिट्टी है। यहाँ जिस प्रकार घड़ा कार्य में मिट्टी का भाव है, उसी प्रकार स्थूल, सूक्ष्म सृष्टि के कार्य में त्रिगुणात्मक अज्ञान का भाव है, इसलिये त्रिगुणात्मक अज्ञान उपादान कारण है। निमित्त कारण उस कारण को कहते हैं जिसके कर्तृत्त्व के बिना कार्य न हो। जैसे घड़ा कार्य का कर्त्ता कुम्हार है, वैसे ही स्थूल, सूक्ष्म सृष्टि कार्य का कर्त्ता ईश्वर है। इसलिये ईश्वर सृष्टि का निमित्त कारण है।

साधारण कारण उस कारण को कहते हैं जिसका उपयोग कार्य की उत्पत्ति में सामग्री के रूप में होता है। जैसे घड़ा बनाने में चाक, दंड आदि सामग्री साधारण कारण हैं, वैसे ही स्थूल, सूक्ष्म सृष्टि कार्य के लिये देश, काल सामग्री साधारण कारण है।

उपाधि के कारण स्थूल, सूक्ष्म सृष्टि के पूर्व जीव का मलीन सतोगुण, चिदाभास के व्यवहारिक तथा परमार्थिक ज्ञान से शून्य, सुषुप्ति अवस्था के अनुसार अज्ञान से आवृत अवस्था में था। इसके सिवा चिदाभास के मलीन सतोगुण के परस्पर सम्बन्ध से कर्ता, करण, कर्म; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; भोक्ता, भोग, भोग्य; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य आदि परिस्थिति अपने आप उपस्थित नहीं थी, इस कारण करुणासागर, दयासिन्धु ईश्वर ने करुणारस के आविर्भाव से जीव की आत्मोन्नति हेतु स्थूल, सूक्ष्म आदि सृष्टि

रची। इस कारण अन्तःकरण और चिदाभास के परस्पर सम्बन्ध से जीव के सामने कर्ता, करण, कर्म; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; भोक्ता, भोग, भोग्य; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, आदि परिस्थितियों का त्रिरूप अपने आप स्थापित हुआ।

चिदाभास अर्थात जीव ही कर्त्ता, भोक्ता, ज्ञाता, द्रष्टा है। बुद्धि, स्थूल शरीर युक्त कर्मेन्द्रियाँ करण हैं, त्रिगुणात्मक बुद्धि अज्ञानी का तथा गुणातीत बुद्धि ज्ञानी का ज्ञान है और ज्ञानेन्द्रियाँ और बुद्धि अज्ञानी का तथा केवल बुद्धि ज्ञानी का भोग है। इसी प्रकार नेत्र और त्रिगुणात्मक बुद्धि अज्ञानी का तथा नेत्र और गुणातीत बुद्धि ज्ञानी का दर्शन है।

अज्ञानी का नाना प्रकार का, और ज्ञानी का स्वाभाविक कर्म है; अज्ञानी का पञ्च विषयरूप पदार्थों तथा विषयानन्द और शरीर के रोग, दुःख, सुख की ओर है, तथा ज्ञानी के लिए करुणारस, स्वरूपानन्द या ब्रह्मानन्द और शरीर के रोगरूप दुःख, सुख भोग्य हैं: अज्ञानी के लिये विद्या, कला, सृष्टि के पदार्थ पृथक २ दुःख सुख और ज्ञानी के लिए विद्या कला, दुःख, सुख, ब्रह्म तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म से अभिन्न सृष्टि के पदार्थ ज्ञेय हैं; अज्ञानी के लिये पञ्च विषयरूप सृष्टि दृश्यमान और ज्ञानी के लिये 'अस्ति-भाति-प्रिय' तथा चेतन ब्रह्म से अभिन्न दृश्यमान दृश्य है।

चिदाभास अर्थात जीव कर्ता, करण, कर्म के सम्बन्ध से अल्प शक्तिमान, और ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय के सम्बन्ध से

अल्पज्ञ हं। इसी प्रकार भोक्ता, भोग, भोग्य के सम्बन्ध से अज्ञानी भोगी, ज्ञानी योगी है तथा द्रष्टा, दर्शन दृश्य के सम्बन्ध से आज्ञानी विषयी और ज्ञानी समदर्शी हैं।

अंक ३—(ख) परमार्थिक ज्ञान सदा एकरस सत्य है, और परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान सत्य असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय है। यहाँ जिज्ञासु को यह बोध होना चाहिये कि, परमार्थिक ज्ञान और अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान किसको कहते हैं? अथवा उन ज्ञानों के परस्पर क्या सम्बन्ध हैं?

परमार्थिक ज्ञान वह है जो आदि, मध्य और अन्त में एकरस हो। उदाहरण के लिये आदि में सब पदार्थ पृथिवी से उत्पन्न होते हैं, और अन्त में वे सब क्रम २ से पृथिवी में लीन हो जाते हैं अर्थात् पृथिवी-रूप हो जाते हैं। मध्य में भी वे पृथिवी रूप हैं। यह अनुभव से सिद्ध है, क्योंकि पृथिवी का गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध है, और सब पदार्थों का भी गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध है, इसलिये सब पदार्थ पृथ्वी रूप हैं।

परमार्थिक ज्ञान से विपरीत, अभिन्न अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान वह है जिसके द्वारा केवल मध्यमें परमार्थिक ज्ञान जाग्रत होने के कारण प्रत्येक पदार्थ का रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति पृथक २ प्रतीत होता है, अर्थात सब पदार्थों में पृथिवी रूप का ज्ञान एक रस जाग्रत होने पर भी उनका रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म२भिन्न भिन्न जान पड़ता है।

यथार्थ में ईश्वर, जीव, प्रकृति तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, और कारण शरीर शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात आत्मा से आदि में क्रम २ से उत्पन्न हुए हैं, और अन्त में क्रम २ से वे सब आत्मा में लीन हो जायेंगे। इसलिए मध्यमें ईश्वर, जीव, प्रकृति परमार्थिक ज्ञान से सब चेतन आत्मा अपने आप होने पर भी अध्यात्म-विचार युक्त व्यवहारिक ज्ञान से ईश्वर, जीव तथा प्रकृतिका रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म पृथक २ होता है। किन्तु परमार्थिक ज्ञान से आत्मा जैसे आदि, अन्त में केवल चेतन आत्मा अपने आप है वैसे ही मध्यमें भी वह केवल चेतन आत्मा अपने आप है।

जैसे सब पदार्थ पृथिवीरूप इसलिए हैं कि वे पृथिवी से उत्पन्न हुए हैं, वैसे ही माया, आकाश वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और उनके कार्य रूप अनेक पदार्थ क्रम २ से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात आत्मा से उत्पन्न हुए हैं, और आत्मा चेतन ब्रह्मस्वरूप है, इसलिए वे सब चेतन ब्रह्मस्वरूप हैं अर्थात ईश्वर, जीव, प्रकृति और विकृति रूप पदार्थ सब चेतन ब्रह्म हैं। श्रुति का भी यही तात्पर्य है—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म।"

जिज्ञासु को पूर्ण बोध होनेके लिए परमार्थिक ज्ञान और परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान का कुछ अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक है। इसे इस प्रकार समझना चाहिए कि तरङ्ग, सब पार्थिव पदार्थ, तथा भूषण सत्य असत्यसे विलक्षण अनिर्वचनीय हैं, क्योंकि तरङ्ग का अधिष्ठान जल, सब

पार्थिव पदार्थों का अधिष्ठान पृथिवी, और भूषण का अधि-ष्ठान सोना है। इसके विपरीत समुद्र, पृथिवी, सोना स्वयं परमार्थस्वरूप हैं। इसलिए आदि, अन्त, मध्यमें समुद्र, पृथिवी, सोना का ज्ञान सदा एक रस सत्य है, अर्थात उनका ज्ञान परमार्थिक ज्ञान है, उनमें अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान लेश-मात्र नहीं है।

समुद्र तरङ्गपृथिवी पार्थिव पदार्थ और सोना भूषण की तरह ही (१) शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात आत्मा, और (२) ईश्वरजीव तथा माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और उनके कार्यरूप सब पदार्थ तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर के सम्बन्ध में समझना चाहिए। शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा स्वयं परमार्थ स्वरूप हैं। इसलिए आदि, मध्य, अन्त में आत्मा का ज्ञान सदा एकरस सत्य है, अर्थात आत्मा का ज्ञान केवल परमार्थिक ज्ञान है; आत्मा में अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान लेशमात्र नहीं है। परन्तु ईश्वर, जीव तथा माया आदिक सत्य असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय हैं, क्योंकि उन सबों का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है, अर्थात चेतन ब्रह्म में ईश्वर, जीव तथा माया, आकाश वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और उनके कार्यरूप सब पदार्थ तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर कल्पित हैं।

यद्यपि इस पुस्तक में परमार्थिक ज्ञान की ओर विशेष लक्ष्य है तथापि प्रकरण और अङ्क के अनुसार अध्यात्म विचारयुक्त व्यव-

हारिक ज्ञान के लक्ष्य से ईश्वर, जीव, तथा प्रकृति का रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म पृथक २ स्पष्ट रूप से वर्णित है। अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान चेतन ब्रह्म में कल्पित है, अर्थात् चेतन ब्रह्म के अधिष्ठान के विना अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान इसलिए नहीं हो सकता है कि, माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और उनके कार्यरूप सब पदार्थ तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर चेतन ब्रह्म में कल्पित है। और यह पहले ही कह आये हैं कि चेतन ब्रह्म का ज्ञान परमार्थिक ज्ञान, सदा एकरस सत्य है।

सारांश यह है कि जिज्ञासु को तीन बातें सदा स्मरण रखनी चाहिएँ।

(१) शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा केवल परमार्थ स्वरूप है और उसका ज्ञान केवल परमार्थिक ज्ञान है।

(२) चेतन ब्रह्म ब्रह्मसत्ता है, और सृष्टि का मूल कारण है। इसलिए वह ईश्वर, जीव तथा माया आदिक का अधिष्ठान है।

ईश्वर, जीव तथा माया आदिक चेतन ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं हैं, इसलिए ईश्वर, जीव तथा माया आदिक भी चेतन ब्रह्म-स्वरूप हैं। चेतन ब्रह्म परमार्थ स्वरूप है, इसलिये चेतन ब्रह्म का ज्ञान परमार्थिक ज्ञान है। किन्तु ईश्वर, जीव तथा माया आदिक-का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म होने पर भी उनका रूप, गुण, स्वभाव शक्ति, कर्म पृथक २ है, इसलिये ईश्वर, जीव तथा माया

आदिक का ज्ञान परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान है।

(३) परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म-विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान में सबसे श्रेष्ठ ईश्वर सर्व व्यापक, सर्व शक्तिमान सर्वज्ञादि विशेषण-सम्पन्न है। वही आदि विराट पुरुष परमात्मा भी कहा जाता है, और उसी को सगुण ब्रह्म के रूप में अनेक नाम से भक्त लोग भजते हैं। किन्तु सबसे श्रेष्ठ नाम ओ३म् तथा ओंकार है, क्योंकि ओ३म् तथा ओंकार ब्रह्मवाच्य तथा आदि विराट पुरुष परमात्मा वाच्य का वाचक है (देखो अंक १०)

जिज्ञासु को प्रथम अध्यात्म-विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान हृदय-गत करना चाहिये। क्योंकि जो त्रिगुणात्मक मूलाज्ञान प्राणियों के हृदयगत है, प्राणियों पर उसी के कारण त्रिगुणात्मक अहंकार, मोह, वासना आसक्ति, प्रीति आदि का अधिकार है, जिसका परिणाम दुखमय बन्धन है। जब तक मूलाज्ञान की निवृत्ति नहीं होगी तब तक प्राणी मात्र त्रिगुणात्मक अहंकार, मोह, वासना आसक्ति प्रीति के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते हैं। इसलिए जिज्ञासु को उचित है कि वह सबसे पहिले अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान को हृदयगत करे, जिसकी विवेचना विशेष-रूप से इस प्रकरण के अतिरिक्त साधारणतया अन्य कई स्थलों में भी है। तत्पश्चात् क्रम क्रम से अभ्यास और साधन द्वारा परमार्थिक ज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान, अनुभवगम्य ज्ञान प्राप्त करें।

स्मरण रहे कि जैसे भूषण का सोने से अद्वैत सम्बन्ध है, वैसे ही अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान का परमार्थिक ज्ञान से अद्वैत सम्बन्ध है। इसलिये इस पुस्तक में अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान का त्याग नहीं है। जिस पुस्तक में अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान का त्याग करके आत्म-ज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान का वर्णन किया जाता है उस पुस्तक द्वारा जिज्ञासु को आत्मज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान की सम्यक् सिद्धि नहीं हो सकती है। क्योंकि जैसे आदि, अन्त में चेतन आत्मा अपने आप है, वैसे ही मध्य में भी निर्गुणब्रह्म और सगुणब्रह्म सर्व-रूप केवल चेतन आत्मा अपने आप है।

अंक ३ (ग) जिज्ञासु को सदा स्मरण रखना चाहिए कि चिन्तन दो प्रकार का है। पहिला व्यवहारिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करता है दूसरा परमार्थिक ज्ञान की ओर।

व्यवहारिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करके जो चिन्तन इस प्रकार प्रगतिशील होता है कि मैं स्थूल शरीर हूँ, या मैं सूक्ष्म तथा कारण शरीर हूँ, और मैं धनी हूँ, मैं निर्धन हूँ, मैं विद्वान हूँ, मैं पुण्यात्मा हूँ, मैं पापी हूँ, मैं ईश्वरभक्त हूँ, मैं ज्ञाता हूँ, मैं दानी हूँ, आदि आदि; अथवा मेरा स्थूल शरीर है, या मेरा सूक्ष्म तथा कारण शरीर है, और कुटुम्ब परिवार, स्त्री, पुत्र, शत्रु, मित्र आदिक तथा धन, हाथी, घोड़ा, जमींदारी आदिक मेरा है, वह त्रिगुणात्मक अहंकारमय कहा जाता है, जो बन्धन का कारण होता है।

जो चिन्तन परमार्थिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करके इस प्रकार अग्रसर होता है कि मैं शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द हूँ, या मैं शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय सर्वात्मा हूँ, अथवा मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, कुबेर आदिक हूँ, मैं सर्व में परिपूर्ण होकर सब से अलग हूँ, मैं ही निर्गुणब्रह्म, सगुणब्रह्म सर्वरूप हूँ, मैं चेतन आत्मा अपने आप हूँ, "अहंब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं स्वयं ब्रह्म हूँ आदि आदि, यह सम्पूर्ण चिन्तन-व्यापार राजयोग तथा ज्ञानयोग का साधन है। इसमें त्रिगुणात्मक अहंकार लेशमात्र नहीं है [श्रीमद्भागवद्गीता के अध्याय ७ से १० तक और अवधूतगीता के अध्याय ३ से ७ तक तात्पर्य देखो।]

पूर्व में वर्णन हो चुका है कि, कर्ता, करण, कर्म; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; भोक्ता, भोग, भोग्य; द्रष्टा, आदि स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात आत्मा का चिदाभास है। (देखो अंक २ और ३)।

स्थूल देह पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, और चतुर्थ अन्तःकरण की वृत्ति से चिदाभास अर्थात जीव परे है और उन सब का चिदाभास में धर्म नहीं है। किन्तु मूलाज्ञान के प्रभाव से चिदाभास अपना शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदनन्द अर्थात् आत्मामय स्वरूप भूलकर स्थूल देह तथा पाँच कर्मेंद्रियों पाँच ज्ञानेन्द्रियों, तथा चतुर्थ अन्तःकरण की वृत्ति को ऐसा जानता है कि वे सब मैं ही हूँ, अथवा वे सब मेरे हैं और उन सब का धर्म मेरा ही धर्म है। इसीलिए व्यवहारिक ज्ञान की

ओर लक्ष्य करके चलने वाला चिन्तन त्रिगुणात्मक अहंकार, मोह, वासना आदि देकर बन्धन का कारण होता है।

कदाचित् संयोगवश सत्य शास्त्र, अथवा किसी सत्यपुरुष द्वारा चिदाभास को ज्ञान होता है कि मैं स्थूल देह आदिक से परे हूँ, और स्थूल देह आदिक का धर्म मेरा धर्म नहीं है, मेरा स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात आत्मा है, इसलिए मैं शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द हूँ। आत्मा का ज्ञान व्यवहारिक ज्ञान रहित सदा एक रस है अर्थात अपने स्वरूप आत्मा का ज्ञान ही परमार्थिक ज्ञान है। चिदाभास को अपने स्वरूप आत्मा के अतिरिक्त यह बोध होता है कि स्थूल शरीर का पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, चतुर्थ अन्तःकरण की वृत्ति का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है; चेतन ब्रह्म से भिन्न स्थूल शरीरादिक कुछ नहीं है, इसलिये स्थूल शरीर आदिक चेतन ब्रह्मस्वरूप है। चेतन ब्रह्म परमार्थस्वरूप है इसलिए चेतन ब्रह्म का ज्ञान भी परमार्थिक ज्ञान है। जब चिदाभास अर्थात जिज्ञासु को बोध होता है कि आत्मा तथा चेतन ब्रह्म का ज्ञान परमार्थिक ज्ञान है तब जिज्ञासु परमार्थिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करके जो चिन्तन करता है, वह मुक्ति का कारण होता है।

जिज्ञासु को चाहिए कि परमार्थिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करके जो चिन्तन करे उसका बार बार मनन द्वारा निद्धयासन करे उससे धीरे २ व्यवहारिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करने वाले का त्याग अपने आप होता जायगा। उस चिन्तन का त्याग होने से

राजयोग तथा ज्ञानयोग के साधन में अत्यन्त सुभीता होगा, अर्थात थोड़े काल में राजयोग तथा ज्ञानयोग की सिद्ध हो जावेगी।

श्रीस्वामी दत्तात्रेय जी महाराज ने अवधूतगीता के अध्याय ५-६ के अन्तर्गत "सर्वसमम्", "सर्वशिवम्" के तात्पर्य का, परमार्थिक ज्ञान लक्ष्य से, स्पष्टरूप में वर्णन किया है। उसका उल्लेख इस विषय को और भी हृदयंगम करा देगा। अतएव वह संक्षेप में जिज्ञासु के सामने रखा जाता है। अवधूतगीता में परमार्थिक ज्ञान दो प्रकार से वर्णन किया गया है—

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात आत्मा का परमार्थिक ज्ञान अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान रहित है अर्थात् उसमें अध्यात्म विचार युक्त व्यवहारिक ज्ञ न लेशमात्र नहीं है। क्योंकि आदि, मध्य, अन्त में वह सदा एक रस है, और ईश्वर, जीव तथा माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और उनके कार्यरूप सब पदार्थ तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर में एकरस व्यापक है अर्थात आत्मा, ईश्वर, जीव तथा माया आदिक किसी में भी न्यून अधिक व्यापक नहीं है; सब में सम अर्थात समान रूप से व्यापक है। इसलिए आत्मा को, जो शिव रूप अर्थात कल्याण रूप है, "सर्वसमम्", "सर्व-शिवम्" कहा गया है।

ईश्वर, जीव, माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी उनके कार्यरूप सब पदार्थों का तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है। अथात् ईश्वर,

जीव तथा माया आदिक चेतन ब्रह्म में कल्पित है। इसलिए चेतन ब्रह्म अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान सहित परमार्थिक ज्ञान है, साथ ही केवल चेतन ब्रह्म परमार्थिक ज्ञान है, जो आदि, मध्य, अन्त में सदा एकरस है। माया आदिक चेतन ब्रह्म में कल्पित है, और माया आदिक में से प्रत्येक का रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म पृथक २ है, इसलिए ईश्वर, जीव तथा माया आदिक का ज्ञान परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक और सत्य असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय ज्ञान है। किन्तु परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान सत्य असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय इसलिए है कि ईश्वर, जीव तथा माया आदिक का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है। चेतन ब्रह्म से भिन्न ईश्वर, जीव, तथा माया आदिक कुछ नहीं है। जैसे चेतन ब्रह्म से भिन्न माया आदिक कुछ नहीं है, वैसे ही परमार्थिक ज्ञान से भिन्न अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान भी कुछ नहीं है। जब चेतन ब्रह्म से भिन्न ईश्वर, जीव तथा माया आदिक कुछ नहीं है, और परमार्थिक ज्ञान से भिन्न अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान कुछ नहीं है, तब केवल चेतन ब्रह्म तथा परमार्थिक ज्ञान परमार्थ-स्वरूप है। इसलिए परमार्थिक ज्ञान-लक्ष्य से ईश्वर, जीव, माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर चेतन ब्रह्म-स्वरूप हैं, अर्थात् वे सब ब्रह्म हैं, जो शिवरूप अर्थात् कल्याण रूप है,

और सब सम हैं। इसी तात्पर्य से "सर्वशिवम्", "सर्वसमम्" कहा गया है।

जब चेतन ब्रह्म तथा आत्मा परमार्थिक ज्ञान है तब जैसे आदि, अन्त में जेतन आत्मा अपने आप है, वैसे ही मध्य में भी चेतन आत्मा अपने आप है।

जिज्ञासु को चाहिए कि उक्त दो प्रकार से जो परमार्थिक ज्ञान का वर्णन हुआ है उसका इस प्रकार से ध्यान और लक्ष्य द्वारा मनन तथा निध्यासन करे कि ईश्वर, जीव तथा माया आदिक और माया आदिक के अतिरिक्त जो कुछ मैं कान से सुनता हूँ, आँख से देखता हूँ, रसना इन्द्रिय द्वारा चखता हूँ, नाक से सूँघता हूँ, त्वचा इन्द्रिय द्वारा स्पर्श करता हूँ, मन से उधेड़-बुन, बुद्धि से निश्चय, चित्त से चिन्तन तथा अहङ्कार से अहङ्कार का व्यापार करता हूँ उसके अतिरिक्त कर्ता, करण, कर्म; ज्ञाता ज्ञान, ज्ञेय; भोक्ता, भोग, भोग्य; द्रष्टा दर्शन, दृश्य आदि की जो त्रिपुटी है, उस सर्व में आत्मा एकरस व्यापक है, किसी में न्यून अधिक व्यापक नहीं है। जिज्ञासु को यह निश्चय करना चाहिए कि, आत्मा सर्व में सम व्यापक है, और आदि, मध्य, अन्त में सदा एकरस है अर्थात आत्मा का ज्ञान सदा एकरस परमार्थिक ज्ञान है।

ईश्वर, जीव तथा माया आदिक और माया आदिक के अतिरिक्त कान और कान से जो सुना गया, आँख

और आँख से जो देखा गया, रसना इन्द्रिय और उसके द्वारा जिसका भी स्वाद लिया गया, नाक और नाक से जो सूँघा गया, त्वचा इन्द्रिय और उसके द्वारा जो स्पर्श किया गया, मन और मन से जो संकल्प-विकल्प किया गया, बुद्धि और बुद्धि से जो निश्चय किया गया, चित् और चित्त से जो चिन्तन किया गया, अहंकार और उसके द्वारा अहंकार का जो व्यापार किया गया, तथा कर्ता, करण, कर्म, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; भोक्ता, भोग, भोग्य; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य की जो त्रिपुटी है उस सब का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है, वह सब चेतन ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है; दूसरे शब्दों में वे सब चेतन ब्रह्मस्वरूप हैं। और चेतन ब्रह्म आदि, मध्य, अन्त में सदा एक रस है। अर्थात् चेतन ब्रह्म का ज्ञान सदा एक रस परमार्थिक ज्ञान है।

उक्त सिद्धान्त से सिद्ध है कि, चेतन तथा आत्मा परमार्थ-स्वरूप है, और उनका ज्ञान केवल परमार्थिक ज्ञान है। इसलिए ब्रह्माण्ड और पिण्ड में परमात्मा तथा जीवात्मा ब्रह्मदेव से चींटी तक जो समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर उपाधि सहित है, परमार्थिक ज्ञान लक्ष्य से वे सब चेतन आत्मा अपने आप हैं। जिज्ञासु को चाहिए कि, साधन और अभ्यास द्वारा यह सिद्धि प्राप्त करे कि मध्य में चेतन आत्मा अपने आप वैसा ही है, जैसा आदि, अन्त में।

अंक ४ (क) ईश्वर के संकल्प द्वारा माया के तमोगुण अंश से आकाश हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से

जल और जल से पृथिवी की उत्पत्ति हुई। अर्थात् ब्रह्मसत्ता के कारण ईश्वर के कर्ता, करण, कर्म द्वारा परा प्रकृति से अपरा प्रकृति हुई।

व्याप्त उसको कहते हैं जिसकी सीमा हो। व्यापक उसको कहते हैं जो व्याप्त की सीमा के अन्दर बाहर असीम रूप से व्याप्त हो। किन्तु व्याप्त व्यापक से स्थूल होता है। इसका एक उदाहरण लीजिए। मान लिया कि रङ्ग पानी में घोल कर सूखी मिट्टी में मिला दिया गया तो रङ्ग मिट्टी की सीमा के अन्दर और सीमा के बाहर असीम रूप से व्याप्त कहा जायगा और मिट्टी व्याप्त तथा रङ्ग व्यापक होगा।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से माया स्थूल है, माया से आकाश स्थूल है, आकाश से वायु स्थूल है, वायु से अग्नि स्थूल है, अग्नि से जल स्थूल है, जल से पृथिवी स्थूल है।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सब से सूक्ष्म है, इसलिए सर्वव्यापक है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी से माया सूक्ष्म है इसलिए माया आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी में व्यापक है।

वायु, अग्नि, जल, पृथिवी से आकाश सूक्ष्म है इसलिए आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी में व्यापक है। अग्नि, जल, पृथिवी से वायु सूक्ष्म है इसलिए वायु अग्नि, जल, पृथिवी में व्यापक है। जल, पृथिवी से अग्नि सूक्ष्म है इसलिए अग्नि, जल,

पृथिवी में व्यापक है। पृथिवी से जल सूक्ष्म है इसलिए जल पृथिवी में व्यापक है।

अंक ४—(ख) शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द समुद्र रूप है, इसलिए आदि, मध्य, अन्त में सदा एकरस परिपूर्ण है। माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी तरंग रूप है इसलिए केवल मध्य में है, आदि, अन्त में नहीं है। शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द की अपेक्षा सब एक दूसरे से स्थूल हैं। समुद्र रूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपार है, उसकी कोई सीमा नहीं है। तरङ्ग रूप माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी की सीमा है, साथ ही सीमित होने की यह विशेषता इनमें क्रमशः बढ़ती गयी है। माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी का शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में समावेश है। इसी प्रकार जो तत्त्व स्थूल है उसका क्रमशः अधिक सूक्ष्म में समावेश है, जो समाविष्ट होता है वह अधिक सीमित होता है।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द की अपेक्षा माया सीमित और स्थूल है, इसलिए माया का शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में समावेश है; माया की अपेक्षा आकाश सीमित और स्थूल है इसलिए आकाश का माया में समावेश है; आकाश की अपेक्षा वायु सीमित और स्थूल है, इसलिए वायु का आकाश में समावेश है; वायु की अपेक्षा अग्नि सीमित और स्थूल है, इसलिए अग्नि का वायु में समावेश है, अग्नि की अपेक्षा जल सीमित और स्थूल है, इसलिए जल का अग्नि में समावेश

है; जल की अपेक्षा पृथिवी सीमित और स्थूल है, इसलिए पृथिवी का जल में समावेश है।

परिधि (क)
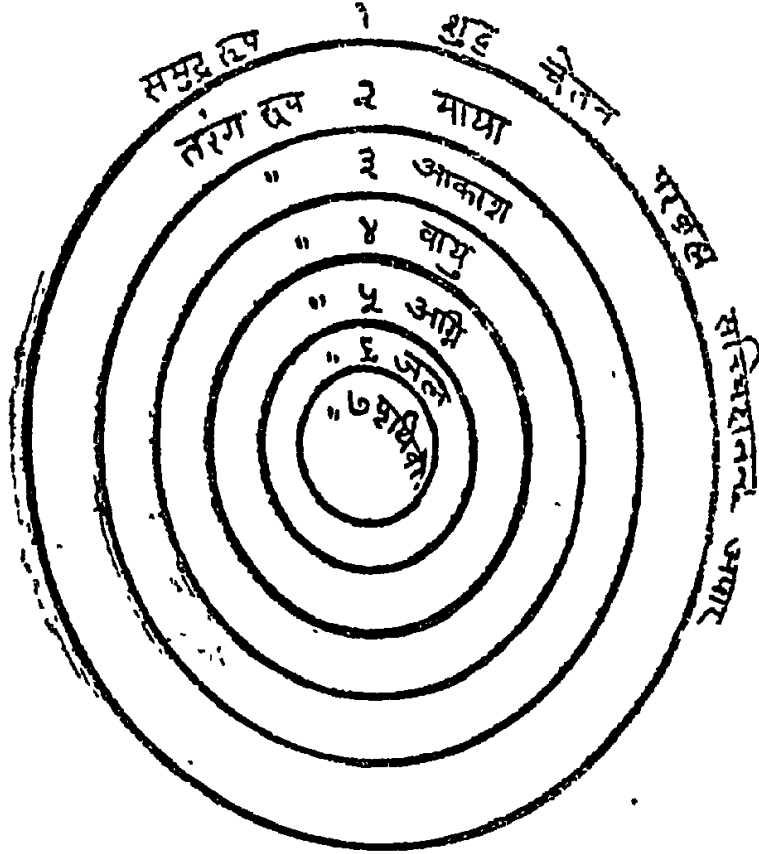
(देखो परिधि क) समुद्ररूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से तरंगरूप माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी अभिन्न है। जैसे समुद्र और तरंग का जल एकरस है, वैसे ही समुद्ररूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और तरंगरूप माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है। (देखो प्रकरण सं० ८)। जिज्ञासु को चाहिए

कि, परिधि (क) का जो बीज गणित लिखा हुआ है उसका बार २ मनन करके ध्यान और लक्ष्य द्वारा हृदयगत ज्ञान प्राप्त करे।

बीजगणित का भावार्थ यह है कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द आदि, मध्य, अन्त में निर्गुण (क) है, इसलिए तीनों काल में बीज गणित अनुसार (क−०=क) निर्गुण एकरस है और माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी आदि, मध्य, अन्त में (क) निर्गुण हैं, साथ ही वे मध्य में (क) निर्गुण रहते हुए (ख) सगुण भी हैं। इस प्रकार आदि, मध्य, अन्त में वे बीज गणित अनुसार (क+ख−ख=क) निर्गुण एकरस है।

जिज्ञासु को स्मरण रखना चाहिए और ध्यानपूर्वक लक्ष्य करना चाहिए कि समुद्ररूप परब्रह्म से अभिन्न तरंगरूप माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी आदि, मध्य, अन्त में निर्गुण रहते हुए केवल मध्य में सगुण है, किन्तु समुद्ररूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द आदि, मध्य, अन्त में केवल निर्गुण है। यथार्थ में माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और उनके कार्य में दो लक्षण हैं, पहिला स्वरूप लक्षण, दूसरा तटस्थ लक्षण जो लक्ष्य के साथ ही रहकर लक्ष्य को औरों से जुदा करता हुआ उसका बोध करावे, उसको स्वरूप-लक्षण कहते हैं। जैसे ताराओं के बीच चन्द्रमा में विशेष प्रकाश है, जिससे बोध होता है कि ताराओं के बीच जो विशेष प्रकाशवाला है

वह चन्द्रमा है। यह प्रकाश ही चन्द्रमा का स्वरूप लक्षण है। किसी लक्ष्य के साथ किसी समय सम्बन्ध वाला होकर जब कोई लक्षण लक्ष्य वस्तु का बोध कराता है तो उसको तटस्थ-लक्षण कहते हैं। जैसे कोई किसी से कहे कि परमात्मा श्रीकृष्ण वह हैं जो मोर मुकुट धारण किये हुए हैं।

स्वरूप-लक्षण और तटस्थ-लक्षण का स्पष्टीकरण इस प्रकार हो सकता है कि जैसे स्वरूप-लक्षण से युक्त नाटक का पात्र नाटक के आदि, मध्य, अन्त में तो पुरुष है, परन्तु तटस्थ लक्षण से युक्त होकर नाटक के मध्यकाल में पुरुष होकर भी स्त्री का रूप धारण कर लेता है। नाटकीय पात्र ही की तरह तरंगरूप माया आदिक ने स्वरूप-लक्षण से आदि, मध्य, अन्त में निर्गुण रहते हुए भी तटस्थ-लक्षण से, केवल मध्य में सगुण रूप धारण कर लिया है।

यद्यपि समुद्ररूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सदा एकरस परिपूर्ण, निर्गुण और लक्षणातीत है, तथापि समुद्ररूप परब्रह्म से अभिन्न तरंगरूप माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी स्वरूप-लक्षण से आदि, मध्य, अन्त में निर्गुण रहते हुए तटस्थ-लक्षण से केवल मध्य में सगुण हैं। इसलिये तरंगरूप माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और उनके कार्यरूप अनन्त पदार्थों में, अधिष्ठान 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म सत्ता से, अनन्त रूप, अनन्त गुण, अनन्त स्वभाव और अनन्त शक्ति, कर्म परिवर्तन के धर्म से युक्त होकर उपस्थित

होती है। वैसे ही समुद्ररूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और समुद्ररूप परब्रह्म से अभिन्न तरंगरूप माया आदिक दो हैं, किन्तु समुद्ररूप परब्रह्म और तरंगरूप माया आदिक दोनों जलरूप 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप से परिपूर्ण होने के कारण केवल समुद्ररूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है। दूसरे शब्दों में, स्वरूप-लक्षण से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द ने सदा एकरस परिपूर्ण रहते हुए, तटस्थ लक्षण से अधिष्ठान 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म सत्ता से माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और उनके कार्यरूप अनन्त पदार्थों में अनन्त रूप, अनन्त गुण, अनन्त स्वभाव, और अनन्त शक्ति, कर्म परिवर्तन के धर्म से युक्त करके धारण किया है; इसलिए शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय सर्वात्मा है (देखो प्रकरण सं० ५)।

शुद्ध चेतन ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है, इसलिए चेतन स्वरूप रहते हुए आनन्द स्वरूप भी है। किन्तु माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और उनके कार्य केवल चेतन स्वरूप हैं। प्रकरण सं० ८ में सिद्ध है कि, माया आदिक 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है। चेतन और 'अस्ति-भाति-प्रिय' का भावार्थ एक है इसलिए माया आदिक केवल चेतनस्वरूप है।

यद्यपि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है, और माया आदिक चेतन स्वरूप है, तथापि शुद्ध चेतन परब्रह्म चेतन में सम है, अर्थात् शुद्ध चेतन परब्रह्म और माया आदिक चेतन

तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है। जैसे नाटक का पुरुष पात्र स्त्री स्वरूप का स्वाङ्ग करता हुआ भी नख से सिर तक पुरुष ही रहता है, वैसे ही शुद्ध चेतन परब्रह्म माया आदिक अर्थात् सगुण ब्रह्म के रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म को स्त्री रूप स्वाङ्ग के होते हुए भी नख से सिर तक अर्थात् रेणु परमाणु में, पुरुषपना रूप चेतन भरपूर है।

जैसे पुरुष पात्र नाटक के समय स्त्री रूप का स्वांग करता हुआ स्त्री रूप के साथ अभिन्नता को प्राप्त होता है, वैसे ही चेतन मध्य में सगुण ब्रह्म का जो रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म है वही चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' है, जो चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' है, वही रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म है। वास्तव में स्वरूप लक्षण से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द ने सदा एक-रस परिपूर्ण रहते हुए केवल एक अंश चेतन से तटस्थ लक्षण के कारण अधिष्ठान चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मपना से समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर में अनन्त रूप, अनन्त गुण, अनन्त स्वभाव, और अनन्त शक्ति, कर्म परिवर्तन के धर्म से युक्त करके धारण किया है। इसलिए शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदान्द सर्वमय, सर्वात्मा है (देखो प्रकरण सं० ५)।

इसी तात्पर्य को दूसरी शैली से स्पष्ट रूप में अवधूत गीता के ७ वें श्लोक में कहा है, जो सातवें अध्याय में है।

केवलतत्त्वनिरन्तर सर्वं योगवियोगौ कथमिह गर्वम्।
एवं परमनिरन्तरसर्व मेवं कथमिह सारविसारम्॥ ७॥

चक्र (ख)

परिचय अंक	तत्त्व ज्ञान	अध्यात्म विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान परमात्मा, जीवात्मा का स्वरूप तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल शरीर आदिक		आत्म ज्ञान		ब्रह्म ज्ञान	
		अध्यात्म भाव	ब्रह्म भाव	आत्मा अनात्मा भाव	निर्गुण सगुण ब्रह्म भाव	विज्ञान विचार से	वेदान्त विचार से
१	शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द	परमात्मा, जीवात्मक स्वरूप	मूल ब्रह्म	आत्मा	निर्गुण ब्रह्म	चेतन भरपूर है	'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म स्वरूप है
२	माया	कारण शरीर	कारण ब्रह्म	अनात्मा	सगुण ब्रह्म	"	"
३	आकाश	पंच भौतिक त्रिगुणात्मक	कार्य ब्रह्म	"	"	"	"
४	वायु	स्थूल	"	"	"	"	"
५	अग्नि	सूक्ष्म शरीर	"	"	"	"	"
६	जल	(देखो अंक ७)	"	"	"	"	"
७	पृथिवी		"	"	"	"	"

पदच्छेदः

केवल तत्त्वनिरन्तरसर्वम्, योगवियोगौ,
कथम्, इह, गर्वम्, एवम्, परमनिरन्तरसर्वम्,
एवम्, कथक, इह, सारविसारम् ॥

पदार्थ

केवल तत्त्व-निरन्तरसर्वम् = केवल आत्म तत्त्व ही एकरस सर्व रूप है।

योगवियोगौ = संयोग और वियोग का।

इह = इस आत्मा में

गर्वम् = अहङ्कार

कथम् = कैसे बन सकता है

एवम् = इसी प्रकार

परमनिरंतर सर्वम् = परम निरन्तर सर्व रूप है

एव = निश्चय करके

इह = इस आत्मा में

सारविसारम् = यह सार है, यह असार है

कथम् = यह कैसे हो सकता है? तात्पर्य यह कि नहीं हो सकते हैं

स्मरण रहे कि ध्यानयुक्त एकाग्रता की परिपक्व अवस्था से परे संकल्प-समाधि वह अवस्था है जिस में अनुभव गम्य ज्ञान इस प्रकार ऐसा प्रत्यक्ष हो कि, समुद्र रूप निर्गुण ब्रह्म, उससे अभिन्न तरङ्ग, रूप सगुण ब्रह्म चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' रूप जल से परिपूर्ण केवल समुद्र रूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है।

संकल्प-समाधि की परिपक्व अवस्था से परे निर्विकल्प समाधि वह अवस्था है जिसमें अनुभवगम्य ज्ञान इस प्रकार प्रत्यक्ष हो कि चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' रूप जल से परिपूर्ण केवल समुद्र रूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है।

इस स्थान में पहिली मुद्रा तत्त्वज्ञान की दूसरी मुद्रा अनुभव-गम्य ज्ञान की जिज्ञासु को बतलायी जाती है। जिज्ञासु को चाहिए कि, भोर, संध्या काल में जितना समय तक हो सके मनन और ध्यान द्वारा इनका अभ्यास करे।

पहिली मुद्रा यह है कि, सगुण ब्रह्म अर्थात् माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी एक दूसरे में समाविष्ट होकर निर्गुण ब्रह्म अर्थात शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में समाविष्ट है।

दूसरी मुद्रा यह है कि समुद्र रूप निर्गुण ब्रह्म, उससे अभिन्न तरङ्ग रूप सगुण ब्रह्म, चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' रूप जल से परिपूर्ण समुद्र रूप केवल शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है।

जिज्ञासु चक्र (ख) में देखेगा कि परिधि (क) अङ्क १ से ७ तक शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सब ब्रह्म है।

ब्रह्म के दर्शन और परिचय के लिए पहिली होलिया यह है कि जो चेतन हो उसको ब्रह्म कहते हैं। शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द आदि, मध्य, अन्त में सदा एकरस परिपूर्ण और

शान्त है, केवल मध्य में सर्वव्यापक, स्वयं सर्व प्रकाशक है और इसलिए निर्विशेष चेतन है।

विकृतिरूप पदार्थ पृथिवी से उत्पन्न होते हैं और पृथिवी में लीन हो जाते हैं, इसलिये उनमें उत्पत्ति और लय शक्ति है। इसी प्रकार तरंगरूप माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी में उत्पत्ति और लय शक्ति है, इसलिए माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और विकृतिरूप पदार्थ तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म, कारण शरीर ये सब सामान्य चेतन हैं।

जो माया की सीमा है उसमें माया तथा मूलाज्ञान है। माया आकाश आदिक में व्यापक है, और मूलाज्ञान परिच्छिन्न है। माया में जो शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का चिदाभास है वह सर्वव्यापक ईश्वर है और मूलाज्ञान में अथवा अन्तःकरण में जो शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का चिदाभास है वह परिच्छिन्न जीव है। ईश्वर में कर्तापन और ज्ञातापन आदिक है, और जीव में कर्त्तापन, भोक्तापन है। इसलिए, ईश्वर-जीव विशेष चेतन हैं।

जो तरंगरूप माया की सीमा है उसके अन्तर्गत सामान्य चेतन और विशेष चेतन हैं। जिस प्रकार तरंगों के एक दूसरे में परस्पर रगड़ होने से फेन आदिक विकार उत्पन्न होता है उसी प्रकार जीवरूप विशेष चेतन और मूलाज्ञान तथा काम,

कर्मयुक्त बुद्धिरूप सामान्य चेतन के परस्पर सम्बन्ध से काम क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, आशा, तृष्णा, दुःख, सुख, ग्रहण, त्याग, हानि, लाभ आदिक विकार उत्पन्न होते हैं, इसलिए वे सब काम, क्रोध आदिक सामान्य चेतन हैं। अंक ४ (ग) में वर्णन किया जा चुका है कि वायु आदिक के तीन रूप हैं, निर्विशेषरूप, विशेषरूप, सामान्यरूप । जैसे निर्विशेषरूप, विशेषरूप, सामान्यरूप तीनों रूपों में वायु वायु ही है, वैसे ही निर्विशेष चेतन, विशेष चेतन, सामान्य चेतन सब चेतन है। जिस प्रकार समुद्र और तरंग जल से परिपूर्णता के कारण केवल समुद्र है, वैसे ही परिधि (क) चेतन से परिपूर्णता के कारण केवल शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है।

माया आदिक शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से उत्पन्न हुआ है, इसलिए शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द मूलब्रह्म है। माया से आकाश आदिक उत्पन्न हुए हैं इसलिए माया तथा समष्टि और व्यष्टि कारण शरीर कारणब्रह्म हैं, और आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और विकृतरूप पदार्थ तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म शरीर कार्यब्रह्म हैं। ब्रह्माण्ड और पिण्ड मूलब्रह्म, कारण ब्रह्म, कार्य ब्रह्म से युक्त हैं, दूसरे शब्दों में चींटी से लेकर ब्रह्मदेव तक व्यक्तिगत प्राणी मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त है। इससे सिद्ध हुआ कि चेतन भरपूर के अतिरिक्त कुछ नहीं है; जो चेतन है वह ब्रह्म है, जो ब्रह्म है वह चेतन है।

हर एक प्रकार से जो कुछ पाँच ज्ञानेन्द्रियों, मन, बुद्धि

द्वारा चिदाभास को अनुभव होता है वह सब ब्रह्म है। रेणु परमाणु सब चेतन है, अर्थात् जो चेतन है वह रेणु परमाणु है, जो रेणु परमाणु है वह चेतन है। इसलिये जो कुछ देखना, सुनना, खाना, पीना, सोना आदिक प्रतीत होता है सब चेतन है, अर्थात सब ब्रह्म है।

श्रुति का भी तात्पर्य यही है—

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"

ब्रह्म के दर्शन और परिचय की दूसरी होलिया यह है कि जिसमें "अस्तित्व" "प्रकटता" "प्रियता" हो उसको ब्रह्म कहते हैं। (क) चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है। सूक्ष्म से सूक्ष्म शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा और स्थूल से स्थूल पहाड़ 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप हैं। (देखो प्रकरण सं० ८)

हम परब्रह्म के प्रसार के सम्बन्ध में इस प्रकरण के अङ्क १ से अंक ४ ख तक लिख आये हैं। यहाँ जिज्ञासु को उसका स्मरण दिलाया जाता है। स्मरण के साथ ही परिधि (क) चक्र (ख) की ओर ध्यान और लक्ष्य करना भी आवश्यक है। ऐसा करने से आगे के व्याख्यान का तात्पर्य ग्रहण करने में सरलता होगी।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपार केवल समुद्र रूप है, जिसमें सत्-चित्-आनन्द रूप जल नित्य भरा रहता है। सच्चिदानन्दमें सच्चिदानन्द के सत्-चित्-आनन्द जो ये तीन अंश हैं उनमें से प्रथम सत् नित्यता का सूचक है, दूसरा अंश चित् है

जो चेतन है, तीसरा अंश आनन्द है। इन तीनों अंशों में चेतन ब्रह्मसत्ता है। यह चेतन वेदान्तमें 'अस्ति-भाति-प्रिय' कहा जाता है। इसलिए ब्रह्मसत्ता का नाम 'अस्ति-भाति-प्रिय' है। (देखो प्रकरण (सं० ८)

जिस प्रकार समुद्र के जल की द्रवता से समुद्र से अभिन्न तरंग की उत्पत्ति होती है, वैसे ही शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द के चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता के प्रभावसे परब्रह्म से अभिन्न मूलमाया तथा मूलाज्ञान हुआ, जिसके संसर्ग से सच्चिदानन्द निर्गुण ब्रह्म के केवल चेतन अंशरूप सगुण ब्रह्म, माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और उनके कार्य हुए। (देखो चक्र (ख) आत्मज्ञानके सामने)। निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म सब चेतन भरपूर तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है, (देखो चक्र (ख) ब्रह्म ज्ञान के सामने)।

मूलमाया में शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का जो चिदाभास हुआ, वह चिदाभास ईश्वर है और मूलाज्ञान में शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का जो चिदाभास हुआ वह चिदाभास जीव है। मूलाज्ञान में तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण का अंश कम विशेष होने के कारण असंख्य जीव परिच्छन्न हुए (देखो अंक १, २)। मूलाज्ञानके कारण जीवों की अवस्था सुषुप्ति अवस्था के अनुसार अज्ञान से आवृत थी। किन्तु ईश्वर मूलमाया के कारण शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञादि लक्षण-सम्पन्न था, साथ ही ईश्वर कर्ता, करण, कर्म; ज्ञाता, ज्ञान,

ज्ञेय, भोक्ता, भोग, भोग्य; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य अपने आप स्वयं आविर्भूत था। ईश्वर में कर्ता, करण, कर्म के कारण सर्वशक्तिमत्ता; ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय के कारण सर्वज्ञता; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य के कारण अन्तर्यामिता; भोक्ता, भोग, भोग्य के कारण करुणासागरता तथा दयालुता है। इसलिए जीवों की आत्मोन्नति हेतु ईश्वर के संकल्प द्वारा मायाके तमोगुण अंश से आकाश; आकाश से वायु; वायु से अग्नि; अग्नि से जल; जल से पृथिवी हुई और त्रिगुणात्मक पंचभौतिक से समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म सृष्टि बनी।

सृष्टि का मूल कारण चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता है (देखो अङ्क ३)। इसलिए माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और समष्टि तथा व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर में चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता वैसे ही ओतप्रोत है, जैसे भूषण में सोना, बर्फ में पानी, और कपड़े में तन्तु ओतप्रोत है।

ईश्वर, जीव के स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द को मूलब्रह्म; माया तथा समष्टि और व्यष्टि कारणशरीर को कारणब्रह्म और आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और उनके त्रिगुणात्मक कार्य समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म शरीर को कार्यब्रह्म कहते हैं (देखो चक्र व्यवहारिक ज्ञानके सामने)।

जब चींटी से ब्रह्मदेव तक मूलब्रह्म, कारण ब्रह्म कार्य ब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी हुए तो ईश्वर-सृष्टिकी प्रणाली के अनु-

सार पाँच लिंग अर्थात् पाँच चिह्न पहिला माता लिंग, दूसरा पिता लिंग, तीसरा पति लिंग, चौथा पत्नी लिंग, पाँचवाँ पुत्र, पुत्री लिंग स्थापित हुआ। जो मूलाज्ञान प्राणियों के हृदयगत है उसके प्रभाव से मनोराज जीव की सृष्टि हुई (देखो प्रकरण सं० ७)। उस मनोराज जीव सृष्टिके कारण "इदं, अहं, मम, त्वम्" द्वारा प्रपञ्चिक ज्ञान का अविर्भाव हुआ। यह प्रपञ्चिक ज्ञान ब्रह्मभावकी आवरण शक्ति है। इसलिए इसको वेदान्त विचार में भ्रान्तिज्ञान कहा है। अज्ञानी प्राणियों ने ब्रह्माण्ड और पिण्ड के कार्यब्रह्ममें विषय-रूप की वेष्टित भावना से, और मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणियों में स्त्री, पुत्र आदिक वेष्टित भावनासे, दृढ़ निश्चयपूर्वक हृदयगत प्रपंचिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है। सिद्ध होता है कि परब्रह्म के प्रसार की प्रवृत्ति और सीमा प्रपंचिक ज्ञान तक है परन्तु परब्रह्म-प्रसार की प्रवृत्ति और तत्त्व ज्ञान की सीमा पृथिवी तथा उनके कार्य तक है (देखो परिधि 'क' और चक्र ख)।

अङ्क ३ (ख) में वर्णन किया गया है कि जो आदि, मध्य, अन्त में एक रस हो वह परमार्थस्वरूप है और उसका ज्ञान परमार्थिक ज्ञान है। आत्मा तथा चेतन ब्रह्म आदि, मध्य, अन्त में एक रस है, इसलिए आत्मा तथा चेतन ब्रह्म परमार्थ स्वरूप है और उसका ज्ञान परमार्थिक ज्ञान है। जिसका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म हो और जिसमें रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म हो वह चेतन ब्रह्मसे अभिन्न व्यवहारिक वस्तु और उसका ज्ञान परमार्थिक

ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म विचार-युक्त व्यवहारिक ज्ञान है। ईश्वर,जीव तथा माया आदिक का अधिष्टान चेतन ब्रह्म है, और उनमें रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति कर्म है, इसलिए वे चेतन ब्रह्म से अभिन्न व्यवहारिक वस्तु हैं और उनका ज्ञान परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान है।

उक्त वर्णन से सिद्ध है कि जो भावमात्र हो वह परमार्थस्वरूप अथवा चेतन ब्रह्म से अभिन्न व्यवहारिक वस्तु, तथा उसका ज्ञान परमार्थिक ज्ञान अथवा परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म-विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान नहीं हो सकता।

मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणियों में स्त्री-पुत्र आदिक का भाव केवल भाव मात्र है। इसलिए स्त्री पुत्र आदिक भाव का ज्ञान परमार्थिक और व्यवहारिक ज्ञान से निराला प्रपञ्चिक ज्ञान है। भाव मात्र का अधिष्टान चेतन ब्रह्म नहीं हो सकता। यथार्थ में भाव मात्र का अधिष्टान मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी भी नहीं है। प्राणियों के हृदयगत जो मूलाज्ञान है उसका तमोगुण अंशरूपी अज्ञान ही इसका अर्थात स्त्री-पुत्र आदिक भावों का अधिष्टान है। इसलिए वेदान्त विचार में प्रपंञ्चिक ज्ञान को भ्रान्ति-ज्ञान कहा है।

जिस प्राणी के हृदय में स्त्री-पुत्र आदिक का भाव जाग्रत है उस प्राणी के सामने आत्मा तथा चेतन ब्रह्म का ज्ञान होने में

दो आवरण हैं। पहिला स्त्री-पुत्र आदिक सम्बन्धी है जिसको तूलाज्ञान कहते हैं। दूसरा अधिष्ठान चेतन ब्रह्म से भिन्न ईश्वर जीव तथा प्रकृति आदिक सम्बन्धी है, जिसको मूलाज्ञान कहते हैं। यहां तूलाज्ञान-मूलाज्ञान का थोड़ा सा स्पष्टीकरण कर देने की आवश्यकता है। अज्ञान से आवृत अर्थात् घिरे होने के कारण यथार्थ वस्तु का ज्ञान होने के स्थान में यथार्थ वस्तु की प्रतीति हो तब उस ज्ञान को तूलाज्ञान कहते हैं। जैसे दूरी और नेत्र-दोष के कारण सीपी में चाँदी और मृगतृष्णा में जल का ज्ञान होता है, तथा सीपी और मृगतृष्णा के निकट जाने पर यथार्थ सीपी और मृगतृष्णा का ज्ञान हो जाता है। प्राणी में जो हृदयगत मूलाज्ञान का तमोगुण अंशरूपी अज्ञान है, अर्थात् प्राणी की बुद्धि के दोष से मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त प्राणी में स्त्री-पुत्र आदिक का जो ज्ञान होता है उस ज्ञान को तूलाज्ञान कहते हैं। मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त प्राणी के यथार्थ ज्ञान से तूलाज्ञान की निवृत्ति हो जाती है।

जब वस्तु का ज्ञान अधिष्ठान से भिन्न होता है तब उसे मूलाज्ञान कहते हैं। उदाहरण के लिए भूषणका अधिष्ठान सोना, कपड़े का अधिष्ठान तंतु, बर्फ का अधिष्ठान पानी है; ऐसा होने पर भी भूषण का सोने से, कपड़े का तंतु से, बर्फ का पानी से भिन्न ज्ञान हो तो उसको मूलाज्ञान कहते हैं। ईश्वर, जीव और प्रकृति का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है। ऐसी अवस्था में चेतन ब्रह्म से

भिन्न ईश्वर, जीव और प्रकृति का ज्ञान मूलाज्ञान है। मूला-ज्ञान की निवृत्ति ब्रह्मज्ञान की सिद्धि से होती है।

श्रीकृष्ण परमात्मा ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि मन ही बन्धन का कारण है और मन ही मुक्ति का कारण है। इसमें यह रहस्य है कि आत्मज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान के बोध में दो आवरण हैं, पहिला तूलाज्ञान, दूसरा मूलाज्ञान।

ये तूलाज्ञान और मूलाज्ञान दोनों भाव मन के धर्म हैं। जब तक मन को इन दोनों भावों की कल्पना है, तब तक जीव को बन्धन है। जब मन इन दोनों भावों की कल्पना से रहित हो जाता है, तब जीव को आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान की सिद्धि से मुक्ति हो जाती है। इसी तात्पर्य को श्रीदत्तात्रेय स्वामी ने अव-धूत गीता के द्वितीय अध्याय के १९, २० श्लोक में स्पष्ट रूप से इस प्रकार कहा है कि जैसे नारिकेल फल के पानी में दो आवरण हैं, वैसे ही ब्रह्मज्ञान के साक्षात्कार में दो आवरण हैं। पहिला बाह्य भाव माता, पिता, स्त्री; पुत्र आदिक-सम्बन्धी, दूसरा मध्यभाव प्रकृति आदिक-सम्बन्धी। जिज्ञासु को यह जानना चाहिए कि जैसे नारिकेल फल के पानी का पहिला आवरण दूसरे आवरण की अपेक्षा बहुत घना है वैसे ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति में पहिला आवरण तूलाज्ञान दूसरे आवरण मूलाज्ञान की अपेक्षा बहुत घना है। इसलिए जिज्ञासु को चाहिए कि पहिले आवरण की निवृत्ति के लिए व्यवहारिक ज्ञानमुद्रा का ध्यान और लक्ष्यपूर्वक मनन करे। इससे पहिले आवरण का संस्कार

अत्यन्त कम हो जावेगा और बाद को कर्मयोग की सिद्धि से पहिला निवृत्त हो जावेगा। तत्पश्चात् राजयोग तथा ज्ञानयोग की सिद्धि से दूसरा आवरण भी निवृत्त हो जावेगा। क्योंकि दूसरा आवरण केवल,अध्यास रूप है।

भूषण का अदिष्ठान सोना है, इसलिए भूषण सोने में अध्यस्त है, अर्थात भूषण सोने से भिन्न कुछ नहीं है। इसी प्रकार चेतनब्रह्म से भिन्न ईश्वर, जीव, देव, प्रकृति भाव अध्यास है; क्योंकि ईश्वर, जीव, देव, प्रकृति का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है। अर्थात् ईश्वर, जीव, देव, प्रकृति चेतन ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है।

अवधूतगीता के दूसरे अध्याय का १६,२० श्लोक देखिए।

वाह्य भावं भवेद्विश्वमन्तः प्रकृतिरुच्यते।
अन्तरादन्तरं ज्ञेयं नारिकेलफलाम्बुवत् ॥१९॥

पदच्छेद

वाह्यभावम्, भवेत्, विश्वम्, अन्तः, प्रकृतिः,
उच्यते, अन्तरात्, अन्तरम्, नारिकेल फलाम्बुवत् ॥

पदार्थ

वाह्यभावम् = बाहर जितना भाव पदार्थ है।
विश्वम् = संसार
भवेत् = होता है
अन्तः = वाह्य भाव के भीतर
प्रकृतिः = प्रकृति
उच्यते = कही जाती है

अन्तरात = अन्तर प्रकृति से भी
अन्तरम् = भीतर
ज्ञेयम् = वह ब्रह्म जानने के योग्य है
नारिकेल फलाम्बुवत् — जैसे नारिकेल फल के अन्दर जल होता है

भ्रान्तिज्ञानं स्थितं बाह्ये सम्यग्ज्ञानं च मध्यगम् ।
मध्यान्मध्यतरं ज्ञेयं नारिकेल फलाम्बुवत् ॥ २० ॥

पदच्छेद

भ्रान्तिज्ञानम्, स्थितम्, बाह्ये सम्यग्ज्ञानम्, च, मध्यगम्, मध्यात, मध्यतरम्, ज्ञेयम्, नारिकेल फलाम्बुवत ॥

पदार्थ

भ्रान्तिज्ञानम्=भ्रमपूर्ण ज्ञान	मध्यात=मध्य से भी
बाह्ये=बाह्य पदार्थों में	मध्यतरम्=अति मध्य
स्थितम्=स्थित है	ज्ञेयम्=जानने के योग्य है
च=और	नारिकेल फलाम्बुवत्=नारिकेल फल के जल की तरह
सम्यग्ज्ञानम्=यथार्थ ज्ञान	
मध्यगम्=भीतर है	

जैसे तत्त्वज्ञान और अध्यात्म-विचारयुक्त-व्यवहारिक ज्ञान में मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म है, वैसे ही मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में तीन नेत्र हैं। पहिला नेत्र है चक्षु आदिक ज्ञानेन्द्रियाँ, दूसरा नेत्र और बुद्धि है तीसरा नेत्र चिदाभास है। चिदाभासको पहिले नेत्र चक्षु आदिक ज्ञानेन्द्रियों, और दूसरे नेत्र बुद्धिद्वारा कार्यब्रह्मका गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और स्वभाव, शक्ति, कर्म क. अनुभव होता है। चिदाभास को केवल दूसरे नेत्र बुद्धिद्वारा कारणब्रह्म के गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म का अनुभव होता है। और मूल ब्रह्म के कारण जो दुःख, आनन्द, उल्लास होता है, उसका अनुभव चिदाभास को

अपने आप होता है। जिज्ञासु को यह जानना चाहिए कि कार्य-ब्रह्म, कारणब्रह्म, मूलब्रह्म चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म स्वरूप है, ऐसी अवस्था में वह चिदाभास को कैसे अनुभव होता है?

जब निर्मल बुद्धि कार्यब्रह्म, कारणब्रह्म, मूलब्रह्म को चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप निश्चित करती है, तो वैसी निर्मल बुद्धि द्वारा चिदाभास को कार्यब्रह्म, कारणब्रह्म, मूलब्रह्म चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप अनुभव होता है।

ब्रह्मज्ञान की जड़ आत्मज्ञान है। जिज्ञासु को आत्मज्ञान होने से तथा अपने स्वरूपानन्द के अनुभव से आत्मा में प्रीति, आत्मा में तृप्ति, आत्मा में सन्तोष होगा। इसी तात्पर्य को श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय के १७वें श्लोक में और पाँचवें अध्याय के २४ वें श्लोक में कहा है।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥
योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोधिगच्छति ॥२४॥

सब ब्रह्माण्ड और पिण्ड सच्चिदानन्द के केवल चेतन अंश हैं। इसलिए शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द को छोड़कर ब्रह्माण्ड और पिण्ड ही नहीं ब्रह्मा, विष्णु महेश आदिक के लोक लोकान्तर में आनन्द नहीं है। इसी से स्पष्ट है कि ब्रह्मज्ञानी

तथा आत्मज्ञानी को राजा महाराजा से सहस्रों गुना अधिक आनन्द, तृप्ति और सन्तोष होता है।

जिज्ञासु को चाहिए कि कर्मयोग अथवा बुद्धियोग की सिद्धि के पश्चात् राजयोग अथवा भक्तियोग की सिद्धि से आत्मज्ञान की साधना करे (देखो प्रकरण सं० ६) और इसके पश्चात् ज्ञानयोग की सिद्धि से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करे (देखो प्रकरण सं० ८)। इसके अनन्तर संकल्प, निर्विकल्प समाधि का अभ्यास करके इस अनुभवगम्य ज्ञान का साक्षात्कार करे कि चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है, अथवा सर्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदादन्द अपने आप है।

चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और माया आकाश वायु अग्नि-जल पृथिवी तथा चींटी से ब्रह्मदेव तक मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है।

जिज्ञासु को सदा स्मरण रखना चाहिए कि जैसे भूषण और भूषण के ज्ञान का सोने से और सोने के ज्ञान से अद्वैत सम्बन्ध है, अर्थात् सोने से भिन्न भूषण कुछ नहीं है, वैसे ही

नोट--जिज्ञासु को चाहिए कि हरएक दिवस भोर, संध्या स्मरण और मुद्रा द्वारा ध्यान पूर्वक मनन करे।

मुद्रा—परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न तत्वज्ञान तथा अध्यात्म-विचार-युक्त-व्यवहारिक ज्ञान का चिन्तन ज्ञानमुद्रा कही जाती है।

ईश्वर, जीव, प्रकृति तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर का और उनके ज्ञान का चेतन ब्रह्म से और ब्रह्म-ज्ञान से अद्वैत सम्बन्ध है, अर्थात् चेतन ब्रह्म से भिन्न ईश्वर, जीव, प्रकृति कुछ नहीं है।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द निर्विशेष चेतन है, चिदाभास अर्थात ईश्वर, जीव विशेष चेतन है, और प्रकृति तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर सामान्य चेतन है। इसलिए शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा और चिदाभास तथा प्रकृति चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म स्वरूप है। परमार्थिक विचार से उनका विभाग नहीं हो सकता है। तथापि परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म-विचारयुक्त-व्यवहारिक ज्ञान के विचार से ब्रह्माण्ड में माया तथा मायाकृत उपाधि के कारण परमात्मा के तीन विभाग हैं। पहिला स्वरूप, दूसरा चिदाभास, तीसरा प्रकृति। परमात्मा का स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा स्वयं, सर्वप्रकाशक, कर्त्ता, अभोक्ता है। चिदाभासं अर्थात ईश्वर में कर्त्तापन और ज्ञातापन आदिक है, परन्तु कर्त्तव्य और निश्चय नहीं है। कर्त्तव्य और निश्चय प्रकृति अर्थात माया तथा मायाकृत का धर्म है, इसलिए ईश्वर उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय सम्बन्धी व्यापार और जीवों को पाप-पुण्य-कर्मका फल देनेका कर्म करता हुआ असंग, अलिप्त है। इसी प्रकार पिण्ड में जीवात्मा के मूलाज्ञान तथा अन्तःकरण आदिक उपाधि के

कारण तीन विभाग हैं, पहिला स्वरूप, दूसरा चिदाभास तीसरा प्रकृति।

जीवात्मा का स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा स्वयं, सर्वप्रकाशक, अकर्ता, अभोक्ता हैं। चिदाभास अर्थात् जीव में कर्त्तापन और भोक्तापन है किन्तु कर्त्तव्य और भोक्तव्य नहीं है। कर्त्तव्य बुद्धि तथा स्थूल शरीर युक्त कर्मेन्द्रिय का धर्म है, और भोक्तव्य बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रिय का धर्म है, इस लिए जीव बुद्धियोग अथवा कर्मयोग साधन द्वारा सब कर्म करता हुआ असंग, अलिप्त हो सकता है।

आत्मज्ञान ब्रह्मज्ञान और अनुभवगम्य ज्ञान का मूल है। क्योंकि, जैसा कि हम कह आए हैं, शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा जैसे आदि, अन्त में केवल अपने आप है, वैसे ही मध्य में भी निर्गुण, सगुण सर्वरूप अपने आप है।

यथार्थ में आत्मा आदि, मध्य, अन्त में केवल चिदाकाश, रूप अपने आप है। जैसे दीवालों पर बनी हुई नाना प्रकार की पुतलियाँ दीवाल से भिन्न कुछ नहीं हैं, वैसे ही चिदाकाशरूपी दीवाल पर बनी हुई ईश्वर, जीव और प्रकृति रूपी पुतलियाँ आत्मा से भिन्न कुछ नहीं हैं।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा ने सदा एकरस परिपूर्ण रहते हुए जो अनन्त रूप धारण किये हैं (देखो प्रकरण सं०५) उनमें वह स्वयं अति सूक्ष्म है। इसलिए, वह ज्ञानेन्द्रिय और मन-बुद्धि का विषय नहीं है। जब आत्मा

ज्ञानेन्द्रिय और मन बुद्धि का विषय नहीं है तो अनुभव द्वारा कैसे प्रतीत होगा कि यथार्थ में आत्मा है या नहीं ?

समुद्र जल से परिपूर्ण रहता है, साथ ही उसमें गम्भीरता और सत्यपना भी है। और जल-द्रवता के कारण केवल जल-अंश से उसमें अभिन्न अनन्त तरंगे उत्पन्न होती हैं और उसी में लीन हो जाती हैं। ऐसा होने पर भी समुद्र सदा एकरस परिपूर्ण रहता है। इसी प्रकार शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात आत्मा चेतन से परिपूर्ण रहता हुआ भी आनन्द और सत्य रूप भी है। ब्रह्मसत्ता के कारण केवल चेतन अंश से समुद्ररूप आत्मा से अभिन्न तरंग रूप माया आदिक उत्पन्न हुए हैं, और उसी में लीन हो जायँगे (देखो अंक १) किन्तु समुद्र रूप आत्मा सदा एकरस परिपूर्ण रहता है।

सारांश यह है कि आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है और माया आदिक और उनके कार्य रूप पदार्थ चेतन रूप हैं।

गम्भीर विचार से प्रतीत होता है कि स्वयं चिदाभास को जो आनन्द, दुःख और उल्लास का अनुभव होता है, वह आत्मा सच्चिदानन्द का आभास है, जिसका विशेष रूप से प्रकरण (सं० २ में वर्णन किया जायगा।

ब्रह्मज्ञान उस गति को कहते हैं जो निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म से परे केवल परमार्थस्वरूप हो। निर्गुण और सगुण ब्रह्म की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है, अर्थात् शुद्ध चेतन परब्रह्म

सच्चिदानन्द निर्गुण ब्रह्म और माया आदिक तथा उनके कार्य सगुण ब्रह्म चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप हैं (देखो प्रकरण सं० ८) ।

यह कहा जा चुका है कि समुद्र नित्य, गम्भीर, जलस्वरूप है, किन्तु समुद्र से अभिन्न तरंग अनित्य केवल जलस्वरूप है, इसलिए समुद्र और उससे अभिन्न तरंग दो वोध होते हुए केवल समुद्र नित्य गम्भीर जल स्वरूप अपने आप हैं। हम यह भी कह आये हैं कि समुद्ररूप निर्गुण ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप है, किन्तु समुद्ररूप निर्गुण ब्रह्म सच्चिदानन्द से अभिन्न तरंगरूप सगुण ब्रह्म केवल चेतनस्वरूप है, इसलिए निर्गुण और सगुण ब्रह्म चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है। अथवा सर्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है। इसी ज्ञान को अनुभव-गम्य ज्ञान कहते हैं। यही तात्पर्य दूसरी शैली से स्पष्टरूप में अवधूतगीता के प्रथम अध्याय के ३२वें श्लोक में समझाया गया है।

सर्वत्र सर्वदा सर्वमात्मानं सततं ध्रुवम्।
सर्वं शून्यमशून्यं च तन्मां विद्धि न संशयः ॥३२॥

पदच्छेद

सर्वत्र, सर्वदा, सर्वम्, आत्मानम्, सततम्, ध्रुवम्, सर्वम्, शून्यम्, अशून्यम्, च, तत, माम्, विद्धि, न, संशयः ॥

पदार्थ

आत्मानम् = आत्मा को ही
सर्वत्र = सब जगह
सर्वदा = सब समय
सर्वम् = सर्वरूप
सततम् = निरन्तर
ध्रुवम् = नित्य
विद्धि = तू जान
सर्वम् = सर्व प्रपंचको
शून्यम् = शून्य जान
च = और (आत्मा को)
अशून्यम् = शून्य से रहित
तत् = सो आत्मा
माम् = मेरे कोही
विद्धि = तू जान
न संशय = इसमें संशय नहीं है

अंक ४ (ग) हर एक तत्त्व निर्विशेष रूप से व्यापक होता है, विशेष और सामान्य रूप से व्यापक नहीं हो सकता है। इस लिए हरएक तत्त्व का तीन रूप है, निर्विशेषरूप, विशेषरूप, सामान्यरूप।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्व-व्यापक है, इसलिए वह निर्विशेष चेतन है। निर्विशेषचेतन, विशेषचेतन, सामान्य चेतन का विशेष वर्णन आगे होगा।

जो माया व्यापक है, वह निर्विशेष रूप है। जो त्रिगुणात्मक माया अज्ञानी के हृदयगत है, वह विशेषरूप है; जो त्रिगुणात्मक माया केवल कारणशरीर मात्र ज्ञानी के हृदमगत है, वह सामान्य रूप है।

जो आकाश व्यापक है, वह निर्विशेष रूप है; जैसे पृथिवी में व्यापक आकाश निर्विशेष रूप है। जहाँ आकाश में कोई पदार्थ

नहीं है, वहाँ विशेष रूप है; जहाँ शहरों में बड़ी २ घनी इमारतें हैं वहाँ आकाश सामान्य रूप है हारमोनियम आदिक बाजों में सामान्य रूप आकाश है; निर्विशेपरूप, विशेपरूप आकाश में स्वर नहीं उत्पन्न हो सकता है।

जो वायु व्यापक है, वह निर्विशेप-रूप है; जिस वायु में वेग विशेप है, (वायु में इतना वेग होता है कि फूस के छप्पर को उड़ा देता है, और गाछ वृक्ष की डालों को तोड़ देता है) वह विशेप-रूप है; देवलोक मृत्युलोक के अन्तरिक्ष में वायु वेगरहित रहता है, अथवा घने मकानों के अन्दर वायु वेगरहित रहता है; वह वायु सामान्यरूप है।

जो अग्नि व्यापक है, वह निर्विशेपरूप है; जिस अग्नि में वेग विशेप है अर्थात् जिससे सब प्रकार का पाक होता है, और जो कुसंयोग से वस्ती के छप्पर को जला देती है, वह अग्नि विशेप रूप है; जो अग्नि वड़वानल तथा जठरा नल रूप प्राणियों के पेट में है, जिससे भोजन का पाचन हो जाता है अथवा पहाड़ों के बड़े २ झरनों में जिस अग्नि से पानी गरम रहता है, (विहार प्रान्त के जिला मुंगेर के पास सीताकुण्ड नामक झरना ऐसा ही है और खरगपुर पहाड़ में भी इस तरह का झरना है) वह अग्नि सामान्यरूप है। जो जल व्यापक है, वह निर्विशेप रूप है; जिस जल में वेग अत्यन्त अधिक है जैसा कि गंगाकी धारा में होता है, जो पृथिवी को काट देती है तथा वरसात में इतनी तेज़ उमंग वाली हो जाती है कि वस्ती को बहाकर नष्ट कर देती है) वह जल विशेप

रूप है; तालाव आदिक के जल में वेग नहीं होता है, वह जल सामान्य रूप है।

पृथिवी व्यापक नहीं है, तो भी जानना चाहिए कि पानी आदिकमें वारीकरूप से जो पृथिवी है, वह निर्विशेषरूप है; जहाँ वड़े कठोर पहाड़ हैं वहाँ पृथिवी विशेपरूप है; जहाँ पृथिवी में अन्न आदिक उत्पन्न होते हैं, वहाँ वह सामान्यरूप है। जैसे माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी के तीन रूप हैं–निर्विशेपरूप, विशेप रूप, सामान्यरूप, वैसेही चेतन के तीन स्वरूप हैं—निर्विशेप चेतन, विशेप चेतन, सामान्य चेतन।

यहाँ यह प्रश्न खड़ा होता है कि कोई जड़ वस्तु चेतन से पृथक है या नहीं? इसका उत्तर इस प्रकार है—

यदि कोई जड़ वस्तु चेतन से पृथक् है, तो चेतन से पृथक् और परे जड़ वस्तु का अधिष्ठान होना चाहिए। किन्तु सूक्ष्म से सूक्ष्म शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और स्थूल से स्थूल पहाड़ 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है, और सव का अधिष्ठान 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता है, अर्थात् किसी वस्तुका अधिष्ठान 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता के अतिरिक्त दूसरा नहीं है। इसलिए कोई जड़ वस्तु नहीं हो सकती है, सव चेतन से भरपूर है। अङ्क ४ (ख) में सिद्ध किया गया है कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द निर्विशेपचेतन है, ईश्वर, जीव विशेपचेतन है, और परा प्रकृति, अपरा प्रकृति तथा विकृति रूप अनन्त पदार्थ सामान्यचेतन हैं; इसी प्रकार अङ्क ४ (ग) में सिद्ध हो चुका है कि शुद्ध चेतन पर-

ब्रह्म सच्चिदानन्द, और परा प्रकृति, अपरा प्रकृति, विकृतिरूप अनन्त पदार्थ सब चेतन ही चेतन है, अर्थात् सब सम है। इसी तात्पर्य को दूसरी शैली से अवधूतगीता के पांचवें अध्याय के २२ वें श्लोक में कहा है—

अतिसर्वनिरन्तरसर्वगतं,
अति निर्मल निश्चल सर्वगतम्।
दिन-रात्रि विवर्जित सर्वगतं,
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम्॥२२॥

पदच्छेद अनावश्यक है।

पदार्थ।

अतिसर्वनिर-न्तरसर्वगतं = वह चेतन अतिशय करके एकरस सर्वगत है	किमु = फिर तू किस वास्ते
अति निर्मल निश्चल सर्वगतम् = अतिनिर्मल है, निश्चल है, सर्वगत है	मानस = हे मन।
	रोदिषि = रुदन करता है
दिन रात्रि विव-र्जित सर्वगतम् = दिन रात्रि से रहित हुआ भी सर्व में गत है	सर्वसमम् = वह सब सम है।

अङ्क ५—पुराणों में वर्णन किया गया है कि ब्रह्मा सृष्टि का काम करने वाला है, विष्णु स्थिति काल में रक्षा और पालन का काम करने वाला है, महेश तथा रुद्र महाप्रलय का काम करने वाला है, इसी प्रकार और देवगण हैं।

जिज्ञासु को यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि पुराणों में जो देवता के होने का वर्णन है, वह क्या अनुमान में आने वाली बात नहीं है, क्या वंध्यापुत्र की तरह देवता का अत्यन्त अभाव है ? अथवा हम लोगों की दृष्टि के बाहर होने के कारण इस अनुमान को ग्रहण करने में हमारी बुद्धि संकुचित है ? विचारपूर्वक इसकी जाँच करनी चाहिए।

वेद के अनेक स्थलों में देवाराधन की वार्ता है। श्रीमद्भगवतगीता के तीसरे अध्याय के निम्नलिखित ११वें श्लोक में देवता का होना सिद्ध है—

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः।
परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भगवतद्गीता के ९वें अध्याय में स्पष्ट-रूप से वर्णन आया है कि जो प्राणी देवता की उपासना करने वाले हैं, उनको दूसरे जन्म में देवलोक प्राप्त होगा, परमधाम नहीं प्राप्त हो सकता है; वेद तथा श्रीमद्भगवद्गीता में देवता की आराधना, उपासना है।

वेद और श्रीमद्भगवद्गीता में देवता की आराधना, उपासना इसलिए है कि तमोगुणी, रजोगुणी प्राणी देवता की निष्काम आराधना, उपासना से सतोगुणी हो सकता है।

अब यह विचार करना है कि देवता की चर्चा और उपासना उपनिषद् में है या नहीं। उपनिषद् में विशेषरूप से ब्रह्मविद्या

की चर्चा है; जो सच्चे वैराग्यशील जिज्ञासु के लिए मुक्ति का साधन है; रही देवता की उपासना सो केवल तमोगुणी, रजो-गुणी प्राणी के लिए है, इसलिए वहां उसका कोई प्रसंग नहीं है।

उपनिषदों के अन्दर विशेष रूप से यह वर्णन मिलता है कि प्रणव मंत्र ओ३म तथा ओंकार के जप और उपासना से ब्रह्म-लोक प्राप्त होता है, इसलिए ब्रह्मलोक का होना उपनिषद से सिद्ध है; इसके अतिरिक्त उपनिषद में ब्रह्म के चार पाद और सोलह कलाओं का वर्णन है, उससे द्युलोक का होना सिद्ध है।

ब्रह्म का चार पाद इस प्रकार है—पहला प्रकाशमान, दूसरा अनन्त मान, तीसरा ज्योतिष्मान, चौथा आयतनमान पाद है। पहिले पाद प्रकाशमान में चार कलाएँ, चारों दिशाएँ हैं; दूसरे पाद अनन्तमान में चार कलाएँ द्युलोक, अन्तरिक्ष पृथिवी और समुद्र हैं; तीसरे पाद ज्योतिष्मान में चार कलाएँ सूर्य, चन्द्रमा, विजली, अग्नि हैं; चौथे पाद आयतनमान में चार कलाएँ सिर, नेत्र, प्राण, मन हैं।

जैसे ब्रह्मलोक, द्युलोक का होना सिद्ध है, वैसे ही सूर्य, चन्द्र देवता प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, जिनसे सृष्टि का काम होता है। यदि सूर्य चंद्रमा न हों तो अन्न, फल, फूल आदिक की और सब प्राणियों को आरोग्य नहीं हो सकता है। इसी प्रकार और देवता भी जो हम लोगों के लिए प्रत्यक्ष नहीं हैं, ईश्वर के नियम अनुसार सृष्टि के कार्यों को कर रहे हैं, अतएव अध्यात्म-विचार से देवता का रहना

और उनका सृष्टि के कार्य को करना सम्भव है। जैसे जीव की उपाधि व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर है, वैसे ही ईश्वर की उपाधि समष्टि, स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर है। जीव के व्यक्ति-रूप को विश्व कहा जाता है; ईश्वर को समष्टि के कारण विराट कहा जाता है। जिस प्रकार विश्व में ईश्वर संकल्पित पांच कर्मेन्द्रियां, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ चतुर्थ अन्तःकरण अलग अलग स्थान में हैं वैसे ही विराट में ईश्वर संकलिपत देवता अलग अलग लोक में हैं, जो द्युलोक अन्तरिक्ष के ऊपर किन्तु जैसे जीव पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों चतुर्थ अन्तःकरण से परे है और फिर भी उन सब से सम्बन्ध रखता है वैसे ही ईश्वर देवता से परे है और फिर भी देवता से सम्बन्ध रखता है।

ईश्वर ने आदि सृष्टि में उत्पति स्थिति महाप्रलय करने तथा जीवों को पाप, पुण्य फल देने का जो नियम बनाया है उसी के अनुसार देवता कर्मचारी रूप से सृष्टि का काम कर रहे हैं। जैसे राज्य में कर्मचारी लोग राजसत्ता के कानून के अनुसार परतंत्र होकर काम करते हैं, राजसत्ता के विरुद्ध अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं कर सकते हैं, वैसेही देवता ईश्वर-सत्ता के नियम के अनुसार परतंत्र होकर सृष्टि के आवश्यक कार्य को करते हैं; वे ईश्वरसत्ता के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते हैं।

इसका रूपक इस प्रकार है—

ईश्वर=राजा रूप है
जीव=प्रजा रूप है
देवता=कर्मचारी रूप है
प्रकृति=व्यवस्था रूप है

अर्थात् प्रकृति द्वारा प्राणियों का सब कार्य और सृष्टि की उत्पति; स्थिति महाप्रलय-सम्बन्धी कार्य होता है।

अंक ६—अंक ८ (क) में यह वर्णन हो चुका है कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और माया, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी में जो सूक्ष्म तत्त्व है, वह स्थूल में व्यापक है। किन्तु अनुभव से सिद्ध नहीं हुआ कि कैसे व्यापक है?

(क) इसमें सन्देह नहीं कि सांख्य शास्त्र ने शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द तथा परमात्मा, जीवात्मा को केवल पुरुष माना है। अंक ३ (क) में वर्णन किया गया कि जैसे महाकाश रूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा है, वैसेही मेघाकाश रूप परमात्मा शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है, और वैसेही जलाकाश रूप जीवात्मा शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है। इसी बात को ध्यान और लक्ष्य में रख कर श्रीकपिलाचार्य ने जिज्ञासु को पुरुष और प्रकृति बोध के निमित्त शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदान्द अर्थात् आत्मा, परमात्मा, जीवात्मा को केवल पुरुष और परा प्रकृति, अपरा प्रकृति तथा विकृति रूप अनन्त पदर्थों को प्रकृति माना है। पुरुष में रूप गुण स्वभाव शक्ति कर्म नहीं है इसके विपरीत प्रकृति में रूप गुण स्वभाव शक्ति कर्म है।

(ख) ब्रह्मविद्या के अनुसार शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द एकरस परिपूर्ण है और उसमें 'अस्ति-भाति-प्रिय', ब्रह्मसत्ता हैं। इस कारण परा प्रकृति अपरा प्रकृत्ति तथा विकृत रूप अनन्त पदार्थों में 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता उसी तरह ओत-प्रोत है, जैसे भूषण में सोना, कपड़े में तंतु और वर्फ में पानी। इससे सिद्ध हुआ कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा सर्वव्यापक है।

माया में रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म है। त्रिगुणात्मक अज्ञान अर्थात् परा प्रकृति, अपरा प्रकृति तथा विकृति रूप अनन्त पदार्थों में रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म है। इसलिए माया परा प्रकृति अपरा प्रकृति, तथा विकृति रूप अनन्त पदार्थों में व्यापक है।

त्रिगुणात्मक परा प्रकृति तथा अपरा प्रकृति में रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म किस प्रकार है, अब इसका स्पष्ट होना आवश्यक है।

रूप सूक्ष्म और स्थूल है, तमोगुण। रजोगुण, सतोगुण, आकाश, वायुका रूप 'सूक्ष्म है, जो बुद्धि का विषय है। अग्नि, जल, पृथिवी और विकृति रूप अनन्त पदार्थों का रूप स्थूल है, जो नेत्र का विषय है। यह नेत्र द्वारा प्रत्यक्ष प्रमाणित है।

परा प्रकृति, अपरा प्रकृति का जो गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म है, वह चक्र (ग) से विदित होगा।

चक्र (ग)

नाम	गुण	स्वभाव	शक्ति	कर्म
तमोगुण	अन्धकार	मल	आवरण शक्ति	पाप कर्म
रजोगुण	अन्धकार युक्त प्रकाश	विक्षेप	क्रिया शक्ति	सकाम कर्म
सतोगुण	प्रकाश	शान्ति	ज्ञान शक्ति	निष्काम कर्म
आकाश	शब्द	गम्भीरता	अवकाश, समावेश अर्थात् धारणा शक्ति	सब वस्तुओं को अपने में अवकाश देना और धारण करना
वायु	स्पर्श	चंचलता	गमन आगमन	गमन करना, तोड़ना, वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना
अग्नि	रूप	तेजस्विता	दाह, जलन, प्रकाश	पदार्थों को पकाना तथा भस्म कर देना आदिक
जल	रस	चमक	जीव-रक्षा-शक्ति	प्यास बुझाना, गाछ वृक्ष आदिक को हरा भरा रखना
पृथिवी	गन्ध	शैथिल्य	सब वस्तुओं की उत्पत्ति, रक्षा और अपने में लय करने की शक्ति	सब वस्तुओं को उत्पन्न करके उनकी रक्षा करना

आकाश, वायु, अग्नि, जल पृथिवी की व्यापकता केवल गुणों से स्पष्ट विदित हो जायगी।

आकाश का गुण शब्द है, और वायु में स्पर्श शब्द दोनों गुणों का अनुभव होता है। इसलिए आकाश वायु में व्यापक है। इसी प्रकार अग्निका गुण रूप है, साथही उसमें शब्द और स्पर्श गुण का अनुभव भी होता है। इसलिए आकाश, वायु अग्नि में व्यापक है। जल का गुण रस है, साथही उसमें शब्द, स्पर्श और रूप का भी अनुभव होता है। इसलिए आकाश वायु, अग्नि जल में व्यापक है; पृथिवी का गुण गन्ध है, साथही उसमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस का भी अनुभव होता है। इस लिए पृथिवी में आकाश, वायु, अग्नि जल, व्यापक है; और विकृति रूप सब पदार्थों में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध है, इसलिए सब पदार्थों में आकाश, वायु, अग्नि जल, पृथिवी व्यापक है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि त्रिगुणात्मक परा प्रकृति, अपरा प्रकृति तथा विकृति रूप अनन्त पदार्थोंमें रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म है। इसलिए माया उनमें व्यापक है।

यह भी सिद्ध हो चुका है कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वव्यापक है, इसलिए परा प्रकृति, अपरा प्रकृति तथा विकृतिरूप अनन्त पदार्थों में 'अस्तिभाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता ओत-प्रोत है।

अंक ७—अपञ्चीकृत पंचभौतिक से सूक्ष्म सृष्टि हुई और पञ्चीकृत पंचभौतिक से स्थूल सृष्टि हुई। ईश्वर के संकल्प द्वारा पंचभौतिक इस प्रकार पञ्चीकृत हुआ कि पांचों तत्वों के दो २ हिस्से हुए, एक २ हिस्सा अलग २ रहा। हरएक तत्त्व का जो एक २ हिस्सा अलग रहा उसके चार २ हिस्से हुए। इस प्रकार कुल बीस हिस्से हुए। फिर हर एक तत्त्वका एक २ हिस्से जो अलग रहे थे उनमें से आकाश के आधे हिस्से में वायु का चौथाई हिस्सा, अग्नि का चौथाई हिस्सा; जल का चौथाई हिस्सा और पृथिवी का चौथाई हिस्सा मिला। वायुके आधे हिस्से में आकाश का चौथाई हिस्सा; अग्निका चौथाई हिस्सा; जल का चौथाई हिस्सा मिला, अग्नि के आधे हिस्से में आकाश का चौथाई हिस्सा वायु का चौथाई हिस्सा, जल का चौथाई हिस्सा: पृथिवी का चौथाई हिस्सा मिला; जल के आधे हिस्से में आकाश का चौथाई हिस्सा, वायु का चौथाई हिस्सा, अग्नि का चौथाई हिस्सा, पृथिवी का चौथाई हिस्सा मिला: इसी प्रकार पृथिवी के आधे हिस्से में आकाश का चौथाई हिस्सा, वायु का चौथाई हिस्सा, अग्नि का चौथाई हिस्सा, जल का चौथाई हिस्सा मिला। और पञ्चीकृत पंचभौतिक से हड्डी मांस आदिक स्थूल शरीर रचा गया।

अपञ्चीकृत पंचतत्व के समूल भागों के सतोगुण से अंतःकरण हुआ, अंतःकरण में मन, बुद्धि, चित् और अहङ्कार चार वृत्तियां हैं।

चक्र (घ)

त्रिपुटी आदि देव, अध्यात्म आदिभूत तथा धर्म, गुण का चक्र

आदि देव	अध्यात्म	आदिभूत तथा धर्म, गुण	
पहाड़ समुद्र आदिक विराट	हड्डी मांस आदिक स्थूल शरीर	प्राणमय कोश-सम्बन्ध से भूख, प्यास, शीत, उष्णता	
 चन्द्रमा ब्रह्मा विष्णु महेश	अन्तःकरण मन बुद्धि चित् अहंकार	संकल्प-विकल्प करना निश्चय करना चिन्तन करना अहंकार करना	
 सूर्य आकाश वायु वरुण अश्विनीकुमार	ज्ञानेन्द्रिय चक्षु श्रोत त्वचा रसना नासिका	 रूप देखना सुनना स्पर्श करना स्वाद लेना सूंघना	पञ्च प्राण प्राण = हृदयगत अपान = गुदागत उदान = कंठगत सामान्य = नाभिगत व्यान = सम्पूर्ण शरीरगत
 अग्नि इन्द्र वामन प्रजापति यम	कर्मेन्द्रिय वाक्य हाथ पैर लिंग गुदा	 बोलना देना लेना चलना मूत्र त्याग मल त्याग करना	

आकाश के सतोगुण से श्रोतृ ज्ञानेन्द्रिय, अग्नि के सतोगुण से चक्षु ज्ञानेन्द्रिय, वायु के सतोगुण से त्वचा ज्ञानेन्द्रिय, जल के सतोगुण से रसना ज्ञानेन्द्रिय और पृथिवी के सतोगुण से नासिका ज्ञानेन्द्रिय हुई।

आकाश के रजोगुण से वाक्य कर्मेन्द्रिय, वायु के रजोगुण से पैर कर्मेन्द्रिय, अग्नि, के रजोगुण से हाथ कर्मेन्द्रिय, जल के रजोगुण से मूत्र-स्थान कर्मेन्द्रिय और पृथिवी के रजोगुण से गुदा-स्थान कर्मेन्द्रिय पञ्च भौतिक रजोगुण से पञ्चप्राण हुआ। अर्थात् अपञ्ची पञ्चभौतिक रजोगुण, सतोगुण से सूक्ष्म शरीर रच गया।

स्मरण रहे कि माया में शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा का जो चिदाभास है वह ईश्वर है, मूला ज्ञान तथा अन्तःकरण में शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा का जो चिदाभास है वह जीव है और चिदाभास अर्थात् ईश्वर कर्मों के फल को तथा उत्पत्ति, स्थिति, लय के नियमों को निश्चित करने वाला है, और चिदाभास अर्थात् जीव पाप, पुण्य कर्मों का करनेवाला तथा भोगों का भोगने वाला है—आदि जो कुछ कहा गया है वह श्रीमद्भगवद्गीता आदि के अतिरिक्त विचारसागर आदिक पुस्तकों में भी मिलेगा।

जिज्ञासु के मनोनिवेश के 'लिए 'विचारसागर' से पद्यवद्ध वर्णन यहाँ दिया जाता है :—

चित छाया माया विषे, अधिष्ठान संयुक्त।
मेघ व्योम सम ईश है, अन्तर्यामी मुक्त।
काम कर्म युत बुद्धि में, जो चेतन प्रतिबिम्ब।
विद्यमान सो जीव है, जल नभ तुल्य सबिंब।
समल व्यष्टि अज्ञान में, जो चेतन आभास।
अधिष्ठान कूटस्थयुत, कहें जीव पद तास।
कर्मी छाया देत फल, नहिं चेतन में योग।
सो असंग एक रूप है, जाने भिन्न कुलोग।

स्मरण रहे कि चित् का अर्थ चेतन अथवा शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अथवा आत्मा है, छाया का अर्थ चिदाभास है, "कर्मी छाया देत फल" का अर्थ यह है कि चिदाभास रूप जीव जो कर्म करता है उसका फल चिदाभास रूप ईश्वर देता है।

ईश्वर, जीव का अधिष्ठान और स्वरूप एक है, अर्थात् ईश्वर, जीव का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म और स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है। यद्यपि ईश्वर, जीव के अधिष्ठान, चेतन ब्रह्म और स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है, तथापि परमात्मा और जीवात्मा की जो उपाधि रूप मूलमाया अर्थात् शुद्ध सतोगुण और मूलाज्ञान अर्थात मलीन सतोगुण का अधिष्ठान भी चेतन ब्रह्म ही होने पर भी उनके रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म में भिन्नता है, जिस भिन्नता के कारण ईश्वर नित्य मुक्त है, और जीव त्रिगुणात्मक अहङ्कार, मोह वासना के बन्धन में है। इसलिए

जिज्ञासु को चाहिए कि कर्मयोग आदिक साधन के अतिरिक्त परमात्मा के नाम "हरि ॐ तत्सत्" आदिक का चिन्तन और स्मरण किया करे।

अंक ८ (क) सूक्ष्म विचार से समुद्र की शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से और तरंग की परा प्रकृति, अपरा प्रकृति, विकृतिरूप अनन्त पदार्थों तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर से समता है। समुद्र के जल में अपने आप द्रवता है और कर्ता, करण, कर्म का विकार नहीं है। इस कारण समुद्र में अपने आप स्वयं समुद्र से अभिन्न तरङ्गें उत्पन्न होती हैं, जो अन्त में उसी में लीन हो जाती हैं। आदि अन्त में समुद्र एकरस परिपूर्ण है और मध्य में तरंगमय होने पर भी एकरस परिपूर्ण है। इसलिए समुद्र से भिन्न तरंग कुछ भी नहीं है, क्योंकि तरंग का आधार, अधिष्ठान समुद्र है। इसी प्रकार शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में अपने आप चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता है, और कर्ता, करण, कर्म विकार नहीं है, तो भी आदि में 'अस्ति-भाति-प्रिय' सत्ता के कारण अपने आप स्वयं शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से अभिन्न मूलमाया तथा मूलाज्ञान अर्थात परा प्रकृति उत्पन्न हुई: परा प्रकृति, अपरा-प्रकृति से विकृतिरूप अनन्त पदार्थ तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर हुए, और अन्त में वे सब क्रम क्रम से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में लीन हो जायँगे। आदि अन्त में जैसे शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द एक रस परिपूर्ण

है, वैसे ही मध्य में परा प्रकृति आदिक होने पर भी शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द एक रस परिपूर्ण है। इसलिए शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से पृथक् परा प्रकृति आदिक कुछ नहीं है, क्योंकि परा प्रकृति आदिक का आधार, अधिष्ठान शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है।

अंक ८ (ख) जैसे तरङ्गें समुद्र से अभिन्न होकर भी एक दूसरे से छोटी वड़ी हैं, अर्थात् उनमें भिन्नता है, वैसे ही शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से अभिन्न रहते हुए भी मूलमाया अर्थात् शुद्ध सतोगुण और त्रिगुणात्मक मूलाज्ञान अर्थात् मलीन सतोगुण में भिन्नता है (देखो अंक २)। समुद्र सव विकारों से असंग रहता है, यद्यपि तरङ्गों में उत्पत्ति, स्थिति, लय, तथा छोटी वड़ी होने का और आपस में रगड़ से फेन आदिक होने का विकार है। वैसे ही शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सव विकारों से असंग रहता है, यद्यपि त्रिगुणात्मक मूलाज्ञान में उत्पत्ति; स्थिति, लय और चींटी से ब्रह्मदेव तक नीचा ऊँचा होने का और अन्तःकरण में स्थित चिदाभास और मूलाज्ञान के परस्पर सम्वन्ध से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, हानि, लाभ, जीवन, मरण आदिक विकार है। यथार्थ में मूलाज्ञान के कारण ही वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद गीता आदिक तथा और भी मत मतांतरों का पृथक् २ सम्प्रदायों के अनुसार अविर्भाव है

जिज्ञासु को यह जानना चाहिए कि जैसे शुद्ध चेतन परब्रह्म

सच्चिदानन्द में बन्धन और मुक्ति नहीं है, वैसे ही मूलमाया, मूलाज्ञान, त्रिगुणात्मक कारण और उसके कार्यों में बन्धन मुक्ति नहीं है, मुक्तिबन्धन, ईश्वर, जीव में है।

अङ्क ८ (ग) यह समस्या कठिन प्रतीत होती है कि एक ओर समुद्ररूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और तरंग रूप मूलमाया, मूलाज्ञान तथा त्रिगुणात्मक कारण और उसके कार्यों में तो बन्धन मुक्ति नहीं है, और दूसरी ओर ईश्वर, जीव में मुक्तिबन्धन, है। प्रश्न यह खड़ा होता है कि ईश्वर, जीव समुद्र रूप है या तरंग रूप। इसका उत्तर यह है कि ईश्वर, जीव तरङ्ग रूप नहीं हो सकता है, क्योंकि समुद्ररूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द चिदाभास सहित परमात्मा, जीवात्मा है, केवल चिदाभास ईश्वर, जीव है। शुद्ध सतोगुण के कारण ईश्वर नित्य, शुद्ध-बुद्ध, मुक्त है। मलीन सतोगुण के कारण जीव वद्ध है। इस लिए अब हमें इस विषय पर विचार करना चाहिए कि मलीन सतोगुण के कारण वन्धन में पड़ने वाले जीव की किस साधन से मुक्ति हो सकती है ?

मूलाज्ञान त्रिगुणात्मक है और जो मूलाज्ञान हर एक प्राणी के हृदयगत है, उसमें त्रिगुणात्मक तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण कम विशेष है (देखो अक २)। इसलिए हरएक प्राणी के चिदाभास में भिन्नता है। उदाहरण के लिए तीन घड़े लीजिए। मान लिया जाय कि. इनमें से प्रथम घड़े में बहुत कम मैला पानी है, दूसरे घड़े में उससे विशेष मैला पानी है और तीसरे घड़े में

उससे भी अधिक मैला पानी है। यदि उन तीनों घड़ों को सूर्य के सामने रखा जाय, तो उनके भीतर पानी में सूर्य का चिदाभास एक दूसरे से भिन्न होगा। इसी प्रकार तीन भिन्न भिन्न मनुष्यों के सम्बन्ध में भी समझिए।

घड़ा मनुष्य का अन्तःकरण रूप है, पानी बुद्धि रूप है, मैला सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण मूलाज्ञान रूप है। मनुष्य के घड़ा रूप अन्तःकरण और पानी रूप बुद्धि में भिन्नता नहीं है, किन्तु पहिले मनुष्य की बुद्धि में मूलाज्ञान के सतोगुण का विशेष अंश है, दूसरे मनुष्य की बुद्धि में मूलाज्ञान के रजोगुण का विशेष अंश है, तीसरे मनुष्य की बुद्धि में मैला रूप मूलाज्ञान के तमोगुण का विशेष अंश है, इस कारण शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द एक होता हुआ भी तीन मनुष्यों के जीवरूप चिदाभास में भिन्नता है। इसी प्रकार सब प्राणियों के अन्त.करण की बुद्धि में मूलाज्ञान के अंश सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण की कुछ न कुछ कमी अथवा विशेता होने के कारण जीवरूप चिदाभास में एक दूसरे से भिन्नता है। मनुष्यों के त्रिगुणात्मक मूलाज्ञान के अनुसार साधन भी त्रिवेणी, जमुना, गंगा और सरस्वती के संगम स्वरूप है। जमुना रूप भावभक्ति, कर्म मार्ग है; गंगा रूप जीव दया, अपराभक्ति मार्ग है; सरस्वती रूप पराभक्ति और ज्ञान-मार्ग है। जो मनुष्य तमोगुणी, रजोगुणी हैं, उनका साधन अधिकार के अनुसार भावभक्ति, कर्म-मार्ग है; जो मनुष्य सतोगुणी हैं, उनका साधन अधिकार के अनुसार जीव-दया, अपराभक्ति है।

जो जिज्ञासु गुणातीत अवस्था प्राप्त करना चाहता है, उसका साधन सरस्वती रूप पराभक्ति और ज्ञानमार्ग है। ज्ञान मार्ग साधन में प्रथम साधन कर्मयोग, अथवा बुद्धियोग है, दूसरा साधन राजयोग, अथवा भक्तियोग है, तीसरा साधन ज्ञान-योग है।

गृहस्थ के लिए प्रथम साधन कर्मयोग, और विरक्त के लिए प्रथम साधन बुद्धियोग है (देखो प्रकरण सं० ४); भक्तिमार्ग सम्पादन करने वाले के लिए दूसरा साधन भक्ति-योग, और ज्ञान-मार्ग सम्पादन करने वाले को राजयोग है (देखो प्रकरण सं० ६); इसी प्रकार भक्तियोग तथा राजयोग साधन करने वाले के लिए ज्ञानयोग है। (देखो प्रकरण सं० ८)। क्रम २ से तीनों साधनों की सिद्धि होने पर मनुष्य गुणातीत अवस्था को प्राप्त होता है, जिसके कारण आवागमन नहीं होता है।

प्रत्यक्ष प्रमाण से अनुभव है कि अग्नि से दग्ध किया हुआ बीज अर्थात अन्न नहीं जमता है। इसी प्रकार मूलाज्ञान के कारण त्रिगुणात्मक अहंकार, मोह, वासना आदि आवा-गमन का, बीज ब्रह्मज्ञान की अग्नि से दग्ध होने पर प्राणी नहीं जन्म लेता, आवागमन से रहित हो जाता है और जीवन पर्यन्त स्वरूपानन्द में मग्न रहकर अपने को सर्वमय देखता है।

अंक ८ (घ) जिज्ञासु को यह भी जानना आवश्यक है कि परमात्मा अर्थात् ब्रह्माण्ड की समष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर की उपाधि, तथा जीवात्मा अर्थात् पिण्ड की व्यष्टि स्थूल,

सूक्ष्म, कारणशरीर की उपाधि से विलक्षण है। समष्टि कारण-शरीर के व्यष्टि कारणशरीर से विलक्षण रहने के कारण उपनिषद् आदि में परमात्मा को मायावशिष्ट चेतन, अथवा विद्यावशिष्ट चेतन, अथवा मायोपहित चेतन कहा है और जीवात्मा को अज्ञानावशिष्ट चेतन, अथवा अविद्यावशिष्ट चेतन अथवा अज्ञानोपहित चेतन कहा है। समष्टि सूक्ष्म शरीर व्यष्टि सूक्ष्म शरीर से विलक्षण रहने के कारण ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म शरीर को मायाकृत चेतन अथवा हिरण्यगर्भोपहित चेतन कहा गया है. और पिण्ड का सूक्ष्म शरीर पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, चतुर्थ अन्तःकरण तथा पांच प्राण सहित है, इसके सिवा मनीषियों ने व्यष्टि सूक्ष्म शरीर को अज्ञानकृत चेतन अथवा अन्तःकरणावशिष्ट चेतन भी बताया है।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था तथा उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर की दृष्टि से परमात्मा की संज्ञा में विराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर तथा जीवात्मा की संज्ञा में विश्व, तैजस, प्राग कहा है। ब्रह्माण्ड के समष्टि स्थूल शरीर की उपाधि पिण्ड के व्यष्टि स्थूल शरीर की उपाधि से विलक्षण प्रत्यक्ष अनुभव से सिद्ध है। व्यष्टि स्थूल शरीर की उपाधि हड्डी, मांस आदिक रूप में है, इससे विलक्षण समष्टि स्थून शरीर की उपाधि पहाड़, समुद्र, गंगा के दोआवा के बीच की पृथिवी आदिक रूप में है, जिस पृथिवी और पहाड़ में बड़ी २ खानें रूपा, सोना, चाँदी, लोहा अभ्रक, कोयला, मिट्टी के तेल

आदिक को हैं। और भी नाना प्रकार का फल, फूल, अन्न आदिक पृथिवी से उत्पन्न होता है जिससे व्यष्टि स्थूल शरीर की रक्षा होती है। यथार्थ में जब व्यक्तिगत प्राणी पाप, पुण्य के कारण अनेक योनियाँ धारण करता है, तो ईश्वरसत्ता-बल से प्रथम जीव अन्न में प्रविष्ट होता है अर्थात् व्यक्तिगत प्राणी जब स्थूल शरीर त्यागता है, तो सूर्य अथवा चन्द्र मार्ग से ऊपर जाता है, और वर्षा द्वारा मृत्यु लोक के अन्न अथवा फल अथवा घास आदिक में प्रविष्ट होता है। प्राणीमात्र पाप, पुण्य कर्मानुसार जिस योनि में स्थूल शरीर धारण करता है, उस योनि के व्यक्तिगत प्राणी के रीढ़ में प्रविष्ट होकर माता के गर्भ में जाता है। मनुष्य अथवा चारपाये की योनि में जन्म लेने वाले के स्थूल शरीर की रक्षा, गर्भ में किसी रूप से अन्न आदिक से होती है, और जन्म होने पर भी प्राणी के जीवन तक समष्टि स्थूल शरीर रूप पृथिवी के अंश से व्यष्टि स्थूल शरीर की रक्षा होती है, इसलिए समष्टि स्थूल शरीर व्यष्टि स्थूल शरीर से विलक्षण है।

अंक ८ (ङ) जिनको गुणातीत अवस्था अर्थात तुरीयावस्था प्राप्त है, वे ज्ञानी पुरुष हैं, और जो तमोगुणी, रजोगुणी, सतोगुणी प्राणी हैं वे अज्ञानी हैं। इसमें यह रहस्य है कि ब्रह्माण्ड और पिण्ड मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त है, अर्थात् चींटी से ब्रह्मदेव तक व्यक्तिगत प्राणी मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त हैं। ज्ञानी ब्रह्मानन्द अर्थात अपने स्व-

पानन्द में मग्न रहकर मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी को साक्षात् चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप अनुभव करते हैं, अथवा उसको अनुभवगम्य ज्ञान द्वारा 'केवल चेतन आत्मा अपने आप है'—इस रूप में अनुभव करते हैं। इसके विपरीत, अज्ञानी भ्रान्तिज्ञान के कारण मूलब्रह्म, कारणब्रह्म कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में यह चेष्टित भावना करता है कि स्थूल, अथवा सूक्ष्म शरीर मैं हूँ अथवा मेरा है। इसलिए स्त्री, पुत्र आदिक मेरा है।

अज्ञान दो प्रकार का है, पहिला तूलाज्ञान दूसरा मूलाज्ञान। अंक ४ (ख) में वर्णन हो चुका है कि तूलाज्ञान उस ज्ञान को कहते हैं जो मूलब्रह्म कारणब्रह्म कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में स्त्री, पुत्र आदिक भाव धारण करने के रूप में प्रकट होता है। इसके विपरीत, मूलाज्ञान उस ज्ञान को कहते है जो चेतन ब्रह्म अधिष्ठान से भिन्न ईश्वर-जीव-देव-प्रकृति-भाव को ग्रहण करे।

यथार्थ में केवल तूलाज्ञान जिस प्राणी के हृदय में जाग्रत है वह प्राणी तमोगुणी, रजोगुणी है और तूलाज्ञान सहित मूलाज्ञान जिस प्राणी के हृदय में जाग्रत है वह प्राणी सतो-गुणी है किन्तु जिस प्राणी के हृदय से तूलाज्ञान निवृत्त हो गया है उसमें केवल मूलाज्ञान जाग्रत है। अथवा स्त्री पुत्र तथा विषय-वासना से जिस प्राणी के मन में वैराग-शीलता है वह गुणा-तीत अवस्था प्राप्त करनेका अधिकारी है।

हरएक प्राणी के तीन नेत्र हैं, पहिला नेत्र चक्षु आदिक पाँच ज्ञानेन्द्रियां; दूसरा नेत्र बुद्धि और तीसरा नेत्र चिदाभास है।

जिज्ञासु को जानना चाहिए कि परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान के निश्चित् स्वरूप के कारण ब्रह्माण्ड और पिण्ड की अपराप्रकृति, विकृति रूप पंचभौतिक अनन्त पदार्थों अर्थात् कार्यब्रह्म के गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म प्रथम नेत्र चक्षु आदिक ज्ञानेन्द्रियां और दूसरे नेत्र बुद्धि द्वारा अवश्य प्रतीत होते हैं, किन्तु ब्रह्मज्ञानीका चिदाभास परमार्थिक ज्ञान के निश्चित स्वरूप के कारण कार्यब्रह्मको चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म-स्वरूप अनुभव करता है। परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान के निश्चित ब्रह्माण्ड और पिण्ड की परा प्रकृति अर्थात् कारण-ब्रह्म के गुण, स्वभाव, शक्ति कर्म की प्रतिति ब्रह्मज्ञानी को केवल दूसरे नेत्र बुद्धि से अवश्य होती है, किन्तु ब्रह्मज्ञानी का चिदाभास परमार्थिक ज्ञानके निश्चत स्वरूप के कारण ब्रह्मको चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप अनुभव करता है। इसी प्रकार प्राणीमात्र को शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् मूलब्रह्म के कारण जो दुःख, आनन्द, उल्लास प्रतीत होता है, उसका ब्रह्मज्ञानी का तीसरा नेत्र चिदाभास स्वयं स्वरूपानन्द अर्थात आत्मानन्द अनुभव करता है, किन्तु ब्रह्मज्ञानीका चिदाभास पर-माथिक ज्ञानके निश्चित स्वरूप के कारण मूलब्रह्म को चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप अनुभव करता है।

पूर्व में वर्णन हो चुका है कि घड़ारूप अन्तःकरण के

बुद्धिरूप पानी में मलरूप मूलाज्ञान है, उसी कारण शुद्ध बुद्धि द्वारा शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का चिदाभास जैसा प्रकाशित होना चाहिए वैसा नहीं होता है। उस मल को दूर करने के लिए कर्मयोग अथवा बुद्धियोग, राजयोग अथवा भक्तियोग और ज्ञानयोग साधन हैं। जब तक क्रम क्रम से उनका साधन होकर सिद्धि नहीं होगी, तब तक न बुद्धि शुद्ध होगी और न तीसरा नेत्र चिदाभास भली भाँति खुलेगा। तीसरा नेत्र खुलने से प्राणी मात्र को शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द के कारण जो दुःख, आनन्द, उल्लास प्रतीत होता है वह चिदाभास को स्वयं स्वरूपानन्द तथा आत्मानन्द के रूप में अनुभव होगा, और ब्रह्माण्ड और पिण्ड के मूलब्रह्म, कारणब्रह्म तथा कार्य ब्रह्म में चिदाभास को परमार्थिक ज्ञान के निश्चित रूप के कारण चेतन तथा अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म स्वरूप का अनुभव होगा।

जिज्ञासु को चाहिए कि क्रम क्रम से कर्मयोग आदिक की सिद्धि प्राप्त करके संकल्प-निर्विकल्प समाधि द्वारा अनुभवगम्य-ज्ञान का साक्षात्कार करे।

अङ्क ८ (च) शुद्ध आत्मा, परमात्मा, जीवात्मा, देवात्मा, भूतात्मा, चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म-स्वरूप का अनुभव करने के पूर्व जिज्ञासु को इस सम्बन्ध में हृदयगत ज्ञान प्राप्त करना चाहिए कि, शुद्ध आत्मा, परमात्मा, जीवात्मा, देवात्मा, भूतात्मा केवल शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा में कैसे है। जो कुछ ऊपर लिख आये हैं उससे इस प्रश्न को हल करने में यथेष्ट

सहायता मिलेगी। फिर भी इस सम्बन्ध में कुछ विशेष व्याख्या की यहां आवश्यकता है।

जैसे समुद्र में उपाधिरूप तरंग हैं, वैसे ही शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में मूलमाया-मूलज्ञान-उपाधि से शुद्ध आत्मा, परमात्मा, जीवात्मा, देवात्मा, भूतात्मा है। उपाधि के निवृत्त होने पर शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द केवल अपने आप है।

महाकाश रूप निरुपाधि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द शुद्ध आत्मा है, जो निर्गुण, निर्विकार, स्वयं, सर्वप्रकाशक है। उसमें गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म नहीं है, इसलिए वह निर्गुण है; उत्पत्ति, स्थिति, लय, लघुता, विशालता न्यूनता, अधिकता जन्म, मृत्यु, हानि, लाभ, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदिक विकार नहीं है, इसलिए वह निर्विकार है; उसका कोई आधार, अधिष्ठान नहीं है, वह अपने आपमें शान्त है, इसलिए वह स्वयं है; वह सबका आधार, अधिष्ठान है, और सब उसके प्रकाश से प्रकाशित हैं, इसलिए वह सर्वप्रकाशक है।

मूलमाया उपाधि के कारण वही शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा है, अर्थात् मायोपहित चेतन अथवा मायावशिष्ट चेतन अथवा विद्यावशिष्ट चेतन अथवा शुद्ध सतोगुण में चिदाभासयुक्त शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा है। केवल चिदाभास ईश्वर है। ईश्वर नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञादि है; उत्पत्ति, स्थिति, लय और जीवों के पाप, पुण्य फल के नियम को निश्चित करनेवाला

मूलाज्ञान उपाधि के कारण वही शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द जीवात्मा है, अर्थात् अविद्यावशिष्ट चेतन, अथवा अविद्योपहित चेतन, अथवा अज्ञानकृत चेतन अथवा अन्तःकरणावशिष्ट चेतन अथवा मलीन सतोगुण में चिदाभासयुक्त शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द जीवात्मा है। जो चिदाभास जीव है वह बद्ध, अल्पशक्तिमान्, अल्पज्ञादि परिच्छन्न है, पाप-पुण्य कर्म के कारण कभी नीची योनि, कभी ऊँची योनि में आवागमन करता है और जब कर्मयोग आदिक की सिद्धि होती है तब मुक्त होकर आवागमन से रहित होता है।

हिरण्यगर्भ आदिक उपाधि के कारण वही शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द देवात्मा है, अर्थात् मायाकृत चेतन अथवा हिरण्यगर्भोपहित चेतन देवात्मा अथवा देवता है, जो कर्मचारी रूप से ईश्वर-सृष्टि के नियम के अनुसार काम करने वाला है।

अपरा प्रकृति उपाधि के कारण वही शद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द भूतात्मा है, अर्थात् अपरा प्रकृति द्वारा उपहित चेतन भूतात्मा है जो पञ्च भूत द्वारा उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का काम करता है।

यथार्थ में शुद्ध आत्मा, परमात्मा, जीवात्मा, देवात्मा, भूतात्मा, सब चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है, इससे सिद्ध होता है कि, केवल "चेतन आत्मा अपने आप है।"

अंक ६—श्रीमद्भगवद्गीता और इस पुस्तक के तात्पर्य में कितनी समता है, जिज्ञासु को इस विषय में कुछ बता देना उचित

होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञान का एक समुद्र है, जो सांख्य योग अर्थात् बुद्धि योग अथवा कर्मयोग राजयोग अथवा भक्तियोग ज्ञानयोग की लहरों से सुशोभित हो रहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता के सातवें अध्याय के तीसवें श्लोक का आशय है कि परमात्मा सच्चिदानन्द स्वयं अपने आप आदियज्ञ, आदिदेव; अध्यात्म, आदिभूत वासुदेव स्वरूप है। इस पुस्तक में उसी के जोड़ में निर्गुण सगुण ब्रह्म चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है। श्रीमद्‌गवद्‌गीता में जिसे क्षेत्रज्ञ कहा है, उसको इस पुस्तक में ब्रह्माण्ड में परमात्मा, पिण्ड में जीवात्मा कहा है; श्रीमद्‌ग-वद्‌गीता में जिसे क्षेत्र कहा है, उसको इस पुस्तक में समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर कहा है; श्रीमद्‌गवद्गीता में जो अक्षर है, उसको इस पुस्तक में निर्गुणब्रह्म कहा है; श्रीमद्‌गवद्‌गीता में जो क्षर है, उसको इस पुस्तक में सगुणब्रह्म कहा है; श्रीमद्‌गवद्‌गीता विज्ञान, वेदान्त, ब्रह्मविद्या, अध्यात्म-विद्या के आधार पर है, वैसे ही यह पुस्तक भी विज्ञान, वेदान्त, ब्रह्मविद्या, अध्यात्मविद्या के आधार पर है; श्रीमद्‌गवद्‌गीता में निर्गुणब्रह्म को नित्य, और सच्चिदानन्द तथा सगुणब्रह्म को अनित्य, केवल वासुदेवस्वरूप कहा है, इस पुस्तक में निर्गुण-ब्रह्म को नित्य, और सच्चिदानन्द, तथा सगुणब्रह्म को अनित्य और चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप कहा है; श्रीमद्-

भगवद्‌गीता में सांख्ययोग अर्थात् बुद्धियोग तथा कर्म- योग, राजयोग तथा भक्तियोग, ज्ञानयोग साधन है, वैसे ही इस पुस्तक में सांख्ययोग अर्थात् बुद्धियोग तथा कर्मयोग, राजयोग तथा भक्तियोग, ज्ञानयोग साधन है।

अंक १० (क)—मीमांसाकारों ने ओ३म् तथा ओंकार का बहुत अर्थ किया है। किन्तु ओ३म् तथा ओंकार ब्रह्मवाच्य तथा आदि विराट पुरुष परमात्मा वाच्य का वाचक है, अर्थात् मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त जो ब्रह्माण्ड और पिण्ड है, उस नामी का ओ३म् तथा ओंकार नाम है। ओ३म् तथा ओंकार किसी प्रकार से स्वयं नामी नहीं हो सकता है।

अंक १० (ख)—आदि विराट पुरुष परमात्मा तथा समष्टि व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर उपाधि सहित परमात्मा, जीवात्मा का नाम ओ३म् तथा ओंकार है। इसलिए परमात्मा तथा जीवात्मा चींटी से ब्रह्मदेव तक स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर उपाधि सहित ओ३म् तथा ओंकार स्वरूप है, क्योंकि "अ" से अकार स्थूल, "उ" से उकार सूक्ष्म, "म" से मकार कारण-शरीर और अमात्रा से चिदाभास और शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा का बोध होता है। ओ३म् तथा ओंकार ब्रह्मवाच्य तथा आदि विराट पुरुष पर-मात्मा वाच्य का वाचक है।

अंक १० (ग)—समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण-शरीर उपाधि सहित परमात्मा, जीवात्मा नामी का जो ओ३म्

तथा ओंकार नाम है उसके आधार से मंडूको उपनिषद् में यह वर्णन है कि, "अ" से अकार जाग्रत अवस्था है, जाग्रत अवस्था में चिदाभास अर्थात् जीवका नाम विश्व है (जो विशेष रूप से नेत्र स्थान द्वारा पाँच प्राण, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, चतुर्थ अन्तःकरण, उन्नीस मुखों से स्थूल भोग को भोगने वाला है) "उ" से उकार स्वप्नावस्था है, स्वप्नावस्था में जीव का नाम तैजस है (जो विशेष रूप से कंठ स्थान द्वारा उन्हीं उन्नीस मुखों से सूक्ष्म भोग को भोगने वाला है।) और 'म" से मकार सुषुप्ति अवस्था है। सुषुप्ति अवस्था में जीव का नाम प्राग है, हृदय स्थान की नाड़ी में रहकर अज्ञान आवृत जीव आनन्द को भोगने वाला है; अमात्रा से तुरीयावस्था है; जिसमें जीव केवल शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है। इसलिए यह सिद्ध है कि जैसा आदि में शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदादन्द अपने आप है वैसे ही अन्त में भी केवल शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है; केवल मध्य में अपने आप में रहते हुए शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदान्त ओ३म् तथा ओंकार रूप धारण करता है।

अंक ११ (क)—हरएक मनुष्य को सुषुप्ति अवस्था में अज्ञान आवृत आनन्द होता है, जिस कारण मनुष्य को जागने पर ज्ञान की स्मृति होती है कि मैं सुख से सोया।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि सुषुप्ति अवस्था में अन्तःकरण अर्थात मन, बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ कारणशरीर

में लीन रहती हैं और इष्ट वस्तुओं का अभाव रहता है तो वह आनन्द किसको किस कारण से होता है? और उस आनन्द की ज्ञान-स्मृति किसको होती है?

इसका उत्तर यह है कि सुषुप्ति अवस्था में कारणशरीर के सम्बन्ध से केवल चिदाभास अर्थात् जीव अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सहित रहता है।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का आभास-आनन्द कारण-शरीर में होता है। जैसे मनुष्य दर्पण में अपने मुखड़े को ही देखता है, वैसे ही सुषुप्ति अवस्था में कारण शरीररूपी दर्पण में उस आभास आनन्द को जीव स्वयं अनुभव करता है और जागने पर उसी जीव को ज्ञान-स्मृति होती है, जिस कारण मनुष्य कहता है कि मैं सुख से सोया। इसी प्रकार जाग्रत अवस्था में अन्तःकरण के सम्बन्ध से चिदाभास अर्थात् जीव को अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का आभास-आनन्द बुद्धि के प्रकाश में होता है, इसलिए सुषुप्ति अवस्था में जो आभास आनन्द अज्ञान से आवृत (अन्धकार युक्त) होता है वही आभास-आनन्द जाग्रत अवस्था में प्रकाश-युक्त होता है। किन्तु जीव का सुषुप्ति और जाग्रति का आभास-आनन्द अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का है। भ्रान्ति-ज्ञान के कारण वह आभास-आनन्द जाग्रति में विषय अथवा इष्ट वस्तु अथवा स्त्री, पुत्र आदिक के सम्बन्ध से प्रतीत होता है (देखो प्रकरण सं० २)।

यद्यपि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा मन, बुद्धि का विषय नहीं है, तथापि कारणशरीर रूप मूलाज्ञान में और सूक्ष्मशरीर रूप अन्तःकरण में जो शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का आभास है उससे यह अनुभव होता है कि जीवरूप चिदाभास होने से आत्मा चेतनस्वरूप है और अभास-आनन्द होने से आत्मा आनन्दस्वरूप है।

जिज्ञासु को सदा स्मरण रखना चाहिए कि अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द के अतिरिक्त अनात्म वस्तु में, अथवा स्त्री, पुत्र आदिक में आनन्द नहीं है; क्योंकि सच्चिदानन्द आत्मा के केवल एक अंश चेतन से मूलमाया आदिक तथा अनात्म वस्तु का प्रवाह होता है।

अंक ११ (ख)—आत्मा तथा चेतन ब्रह्म का ज्ञान परमार्थिक ज्ञान है; और, ईश्वर, जीव, प्रकृति का ज्ञान परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान इसलिए है कि ईश्वर, जीव प्रकृति का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है।

जैसे सोने से भिन्न भूषण कुछ भी नहीं है, वैसे ही चेतन ब्रह्म से भिन्न ईश्वर, जीव, प्रकृति कुछ भी नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि परमार्थिक ज्ञान के निश्चित स्वरूप के कारण ईश्वर, जीव, प्रकृति ब्रह्मस्वरूप है, अर्थात् जैसे परमार्थिक ज्ञान के निश्चित स्वरूप के कारण आदि, मध्य, अन्त में आत्मा चेतन ब्रह्मस्वरूप है, वैसे ही परमार्थिक ज्ञान के निश्चित स्वरूप के कारण मध्य में ईश्वर, जीव, प्रकृति चेतन ब्रह्मस्वरूप है।

इसी कारण अनुभवगम्य ज्ञान द्वारा सिद्ध होता है कि जैसे आदि अन्त में चेतन आत्मा अपने आप है, वैसे ही मध्य में भी केवल चेतन आत्मा अपने आप है।

अंक ११ (ग)—यद्यपि परमार्थिक ज्ञान के निश्चित स्वरूप के कारण ईश्वर, जीव, प्रकृति चेतन ब्रह्मस्वरूप हैं, और ईश्वर, जीव का स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा एक है तथा ईश्वर जीव प्रकृति का अधिष्ठान भी एक है, तथापि परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म-विचारयुक्त व्यवहारिक ज्ञान के निश्चित स्वरूप के कारण ईश्वर सब से श्रेष्ठ सर्व व्यापक, सर्वशक्तिमान सर्वज्ञादि है। इसलिए जिज्ञासु को चाहिए कि चेतन ब्रह्म से अभिन्न ईश्वर को जानते हुए कर्मयोग आदिक साधन के अतिरिक्त ईश्वर का नाम "हरि ओ३म् तत्सत्" आदिक स्मरण किया करे। किन्तु ऐसा ज्ञान हृदय में जाग्रत रखना चाहिए कि नाम स्मरण करनेवाला, और नाम और जिसका नाम स्मरण किया जाता है, अर्थात् ईश्वर सब के सब ब्रह्म हैं।

अंक ११ (घ)—जिनको राजयोग तथा ज्ञानयोग की सिद्धि है, उनको परमार्थिक ज्ञान तथा परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान है। किन्तु जिज्ञासु को प्रथम परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान होकर तब परमार्थिक ज्ञान की सिद्धि होती है। किसी २ को सहजिक व्यवहारिक ज्ञान है, मनुष्य मात्र को विशेष रूप से प्रपञ्चिक ज्ञान है।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात आत्मा का ज्ञान केवल परमार्थिक ज्ञान है, आत्मा में परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान तथा प्रपञ्चिक ज्ञान लेशमात्र होना सम्भव नहीं है। ईश्वर, जीव में परमार्थिक ज्ञान परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान, और सहजिक व्यवहारिक ज्ञान होना सम्भव है; उनमें प्रपञ्चिक ज्ञान होना सम्भव नहीं है। प्रकृति अर्थात समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म कारणशरीर में परमार्थिक ज्ञान, परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान, सहजिक व्यवहारिक ज्ञान और प्रपञ्चिक ज्ञान होना सम्भव है। इस सबका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि (१) केवल परमार्थिक ज्ञान के अनुसार आत्मा चेतन ब्रह्मस्वरूप है। परमार्थिक ज्ञान के अनुसार ईश्वर जीव प्रकृति चेतन ब्रह्मस्वरूप हैं; (२) परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान के अनुसार चेतन ब्रह्म से अभिन्न ईश्वर जीव प्रकृति है; (३) सहजिक व्यवहारिक ज्ञान के अनुसार ईश्वर जीव प्रकृति है। ईश्वर जीव में प्रपञ्चिक ज्ञान नहीं हो सकता है; (४) प्रकृति अर्थात् सम्पूर्ण अनात्म वस्तु में और प्राणीमात्र अर्थात् मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में प्रपञ्चिक ज्ञान होना सम्भव है। जैसे इसका अथवा उसका, अथवा मेरा अथवा तेरा स्थूल सूक्ष्म, कारणशरीर धन, दौलत, जमींदारी, मकान, टेबुल, कुरसी आदिक अथवा घोड़ा, हाथी, बैल, बकरी तथा स्त्री, पुत्र आदिक हैं।

मूलाज्ञान के कारण सहजिक व्यवहारिक ज्ञान और तूला-ज्ञान के कारण प्रपञ्चिक ज्ञान स्थिर है, जिससे संसार अर्थात जगत प्रतीत हो रहा है।

जिज्ञासु को सदा स्मरण रखना चाहिए कि जो प्रपञ्चिक ज्ञान तूलाज्ञान के कारण है वह तब निवृत्त होगा जब परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान हृदय में जाग्रत होगा। इसी प्रकार जो सहजिक व्यवहारिक ज्ञान मूलाज्ञान के कारण है, वह हृदय में परमार्थिक ज्ञान जाग्रत होने से निवृत्त होगा। इसलिए जिज्ञासु को चाहिए कि जो पूर्व में परमार्थिक ज्ञान और परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान का वर्णन हो चुका है उसके मनन द्वारा हृदयगत ज्ञान प्राप्त करे।

परमार्थिक ज्ञान को अन्वय ज्ञान, और परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान को व्यतिरेक ज्ञान भी कहते हैं। यथार्थ में आदि, अन्त में आत्मा सगुण-ब्रह्म-रहित है, किन्तु मध्य में आत्मा सगुण-ब्रह्म-सहित है। इसलिए परमात्मा समष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर उपाधि सहित है, और जीवात्मा व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर-उपाधि-सहित है। इसी कारण मध्य में परमार्थिक ज्ञान अर्थात अन्वय ज्ञान के अतिरिक्त जो चेतन से अभिन्न रूप, गुण स्वभाव, शक्ति है, उसके लक्ष्य से परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान अर्थात् व्यतिरेक ज्ञान भी है।

द्वितीय प्रकरण

पञ्चकोश और आनन्द

अङ्क १—अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश स्थूल, सूक्ष्म, कारण-शरीर के अन्तर्गत हैं। स्थूल शरीर को अन्नमय कोश कहते हैं, प्राण और कर्मेन्द्रिय को प्राणमय कोश कहते हैं; मन और ज्ञानेन्द्रिय दोनों को मनोमय कोश कहते हैं; बुद्धि और ज्ञानेन्द्रिय दोनो को ज्ञानमय कोश कहते हैं; इन सबके अतिरिक्त शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा के आभास-आनन्दयुक्त कारणशरीर को आनन्दमय कोश कहते हैं।

आत्मा के आभास-आनन्दयुक्त कारणशरीर को इसलिए आनन्दमय कोश कहते हैं कि सुषुप्ति अवस्था में अन्तःकरण चतुर्थ वृत्ति सहित पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय अज्ञान में लीन रहती हैं तथा चिदाभास को अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा का अज्ञान-आवृत आभास-आनन्द अनुभव होता है। इस अनुभव की ज्ञान-स्मृति जाग्रति में रहती है, इसलिए मनुष्य कहता है कि सुख से सोया।

अङ्क २—जैसे चिदाभास को सुषुप्ति अवस्था में अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का आभास-आनन्द

प्रकाश से रहित और अज्ञान से आवृत अनुभव होता है, वैसे ही जीव अर्थात चिदाभास को जाग्रत अवस्था में अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का आभास-आनन्द अन्तःकरण के प्रकाश में अनुभव होता है। अज्ञानी लोग भ्रान्ति से उस आभास-आनन्द को पाकर ऐसा समझते हैं कि प्रिय वस्तु अथवा प्रिय व्यक्ति रूप स्त्री, पुत्र आदिक में आनन्द है, अथवा वे आनन्दरूप हैं। इसलिए अज्ञानी लोगों को पञ्च विषय रूप वस्तुओं तथा स्त्री, पुत्र, आदिक में आसक्ति प्रीति है, जससे वे राग-द्वेष उत्पन्न करके मानसिक कष्ट भोगते हैं और अपने स्वरूपानन्द से वंचित रहते हैं।

अङ्क ३—थोड़ी देर के लिए अगर यह मान लिया जाय कि, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब आदिक में अथवा उनके भावों में और धन दौलत तथा विषयों के सम्बन्ध में आनन्द है तो यहाँ यह तर्क होता है कि दो चार महीने के लड़के में स्त्री, पुत्र, माता-पिता आदिक का भाव नहीं है, और विषयों का सम्बन्ध नहीं है तो भी हम लड़के को हँसते हुए आनन्दित देखते हैं। इसी प्रकार विरक्त पुरुष को स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब-परिवार तथा धन-दौलत नहीं है, तो भी उसको आनन्दित देखा जाता है। इससे सिद्ध होता है कि सब लोगों को अपने आप स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का आभास-आनन्द है, अर्थात अपने आप स्वरूपानन्द है।

अङ्क ४—शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सदा एकरस

परिपूर्ण है, इसलिए सब लोगों को अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का आभास-आनन्द एकरस होना चाहिए। किन्तु कभी-कभी अज्ञानी लोगों को आनन्द का अत्यन्त विक्षेप होकर मानसिक कष्ट होता है, ऐसा क्यों होता है ?

उक्त मानसिक कष्ट का कारण और रहस्य जिज्ञासु को जानने की आवश्यकता है। इसमें यह रहस्य है कि विशेषरूप से मनुष्यों के अन्तःकरण की तमोगुण, रजोगुण विषयों की ओर वृत्ति है। विषयोन्मुखी वृत्ति के कारण जब उनका चित्त विषय-सम्बन्ध से प्रसन्न और एकाग्र रहता है तो अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का आभास-आनन्द जैसा चाहिए वैसा होता है;परन्तु जब अभिलषित पदार्थ नहीं मिलता है, अथवा कामना पूरी नहीं होती है, अथवा स्त्री, पुत्र आदिक दुखी दिखायी पड़ते हैं, तो प्राणीमात्र का चित्त चंचल होने से अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का आभास अन्तःकरण में स्थिर नहीं होता है; इस लिए मानसिक कष्ट होता है।

आनन्द का मुख्य कारण जीव का स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है, और गौण कारण चित्त की प्रसन्नता और तथा एकाग्र है। यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है। मान-लीजिए कि कोई मनुष्य बोलता सिनेमा अथवा नाटक देख रहा है और उस तमाशे के कारण उसका चित्त प्रसन्न और एकाग्र हो रहा है, जिससे उसको अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का आभास-आनन्द प्राप्त हो रहा है। उसी

अवसर में उसको कोई शोकजनक दुःखात्मक समाचार मिल जावे तो उसके सामने तमाशा ज्यों का त्यों रहते हुए भी चित्त व्याकुल हो जायगा और उसकी अप्रसन्नता और चंचलता से उसको अत्यन्त अधिक मानसिक कष्ट होगा। इसलिए आनन्द का मुख्य कारण जीव का स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है, और गौण कारण चित्त की प्रसन्नता और एकाग्रता है। मानसिक दुःख का कारण चित्त की अप्रसन्नता और चंचलता है।

चित्त की अप्रसन्नता और चंचलता के दूर होने के लिए क्रम २ से कर्मयोग आदिक का साधन है; इसका कोई दूसरा उपाय नहीं है।

मन और ज्ञानेन्द्रियों को विषय भोगों से तीन काल में भी तृप्ति नहीं है। जितना ही विषय-भोग का सम्बन्ध मन, इन्द्रियों को होता है उतना ही और विशेष विषय-वासना की उन्नति होती है।

अङ्क ५—इस जन्म का साधन हो, अथवा पहिले जन्म का साधन हो, जिस मनुष्य के अन्तःकरण की विषयोन्मुख वृत्ति है, वह कर्मयोग अथवा बुद्धियोग-सिद्धि होने से भक्तियोग अथवा राजयोग साधन का अधिकारी हो जाता है; क्योंकि, उसके अन्तःकरण का विषयों से निरोध हो गया है। यह निरोध हो जाने पर भक्तियोग अथवा राजयोग-सिद्धि से अन्तःकरण की ब्रह्मोन्मुख वृत्ति हो जाती है। जिसका अन्तःकरण ब्रह्मोन्मुख

हो जाता है उसका ज्ञानयोग साधन से और संकल्प-निर्विकल्प समाधि के अभ्यास से अनुभवगम्य ज्ञान का साक्षात्कार होता है। ब्रह्मोन्मुखी वृत्तिके ब्रह्मज्ञान में लीन होने पर पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है।

अंक ६–विषयानन्द और प्रेमानन्द ब्रह्मानन्द अर्थात् स्वरूपानन्द से पृथक नहीं है। विषयोन्मुखी वृत्ति वाले मनुष्य को जो अपने स्वरूपानन्द का आभास-आनन्द विषय-सम्बन्ध से प्रतीत होता है उसको व्यवहार में विषयानन्द कहते हैं, वैसे ही जब मनुष्य को आत्मा अथवा परमात्मा के प्रति प्रेम भक्ति के सम्बन्ध से अपने स्वरूपानन्द की प्रतीति होती है तब उसको प्रेमानन्द कहते हैं। ब्रह्मोन्मुखी वृत्ति वाले मनुष्य को अपने आप स्वरूपानन्द अर्थात् अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का अखण्ड आनन्द होता है। इस आनन्द को यथार्थ स्वरूपानन्द अर्थात् ब्रह्मानन्द कहते हैं। जब किसी को चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय'-ब्रह्मस्वरुप-निध्यासन के पश्चात् संकल्प निर्विकल्प समाधि द्वारा नुभवगम्य ज्ञान का साक्षात्कार होता है तब वह ब्रह्मानन्द समरस का भोगी हो जाता है।

अवधूतगीता के सातवें अध्याय के श्लोक सं० १, ८, ६, १० के आशय आगे लिखे गये हैं। जिज्ञासु को चाहिए कि उनकी ओर ध्यान और लक्ष्य करके उसको हृदयगत करें।

पहिले श्लोक का यह तात्पर्य है कि ब्रह्मज्ञानी पुरुष अनि-

च्छित शरीर का निर्वाह करता है और पाप-पुण्य-मार्ग अर्थात् प्रवृत्ति-मार्ग का विसर्जन करता है तथा तूलाज्ञान के कारण जो नाना प्रकार का साम्प्रदायिक संस्कार और माता, पिता, स्त्री पुत्र आदिक भाव शून्यरूप है; इसी प्रकार और मूलाज्ञान के कारण जो चेतन ब्रह्म से भिन्न ईश्वर, जीव, प्रकृति भाव है, उन सबसे पुरुष ब्रह्मज्ञानी हृदय नग्न करके स्थिर होता है और शुद्ध निरञ्जन समरस अर्थात् ब्रह्मानन्द समरस में मग्न रहता है।

जिज्ञासु को चाहिए कि विषय-वासना की आशा-तृष्णा से रहित होकर तथा तूलाज्ञान और मूलाज्ञान के कारण जो भाव हैं उससे हृदय को शून्य करके स्थिर हो जावे और अपने स्वरूपानन्द अर्थात् ब्रह्मानन्द समरस में मग्न होने के लिए पुरुषार्थ करे।

आठवें श्लोक का तात्पर्य यह है कि केवल आत्मतत्त्व सर्वरूप है जो आकाशवत् सदा शुद्ध है। इसलिए उसमें सत्संग और विरुद्ध कुसंग तथा रंग और विलक्षण रंग नहीं है। जिज्ञासु को चाहिए कि ऐसा अनुभव होने के लिए "केवल आत्म तत्त्व सर्वरूप अपने आप है"—इस भाव का पूर्ण अभ्यास करे।

नवें श्लोक का तात्पर्य यह है कि जब योगी मन से निश्चित करके धीरे २ आत्मानन्द को प्राप्त करता है तब वह योग-वियोग से रहित होता है और विहित भोग तथा अहित-भोग से भी रहित होता है। जिज्ञासु को चाहिए कि जो स्वरूपा-

नन्द अर्थात् आत्मानन्द से पृथक् विषयानन्द प्रतीत होता है उसको वह मन से निश्चित करके धीरे २ ऐसा हृदयंगम करे कि स्वरूपानन्द अर्थात् आत्मानन्द अनुभव होने लगे। उस अनुभव से वह योग-वियोग, विहित भोग तथा अहित भोग से अपने आप रहित होगा।

दसवें श्लोक का तात्पर्य यह है कि जो निरन्तर ज्ञान अज्ञान से युक्त है; द्वैत, अद्वैत सिद्धान्त के कारण अनिश्चित है, वह मुक्त नहीं है। साथ ही जो विषय पदार्थों से राग-रहित है वह भी किसी प्रकार से योगी नहीं है; क्योंकि केवल विषयों के विराग और त्याग से कोई योगी नहीं हो सकता है। वास्तव में जो मायामल से रहित आत्मानन्द का भोक्ता है वही योगी है। जिज्ञासु को चाहिए कि ज्ञान अज्ञान और द्वैत-अद्वैत सिद्धान्त से अलग होकर केवल सर्व रूप आत्मतत्त्व का मनन करके उसे हृदयगत करे, जिससे वह शुद्ध निरञ्जन आत्मानन्द समरस भोग का अधिकारी हो जाय।

अवधूतगीता के सातवें अध्याय के उक्त श्लोक संख्या १, ८, ९ और १० का अवलोकन कीजिए—

पदच्छेद

रथ्या कर्पट विरचित कंथपुण्यापुण्य विवर्जित पन्थः।
शून्यागारे तिष्ठति नग्नशुद्ध निरञ्जन समरस मग्नः।

रथ्या कर्पट विरचित कन्थः	गलियों में गिरे पड़े टुकड़ों की गुदड़ी बना कर	पुण्यापुण्य विवर्जित पंथः	पुण्यापुण्य के मार्ग से रहित
		शुद्ध निरंजन समरस मग्नः	शुद्ध मायामल से रहित ब्रह्मानन्द में मग्न

केवलतत्त्वनिरञ्जनसर्वं गगनाकारनिरंतरशुद्धम् ।
एवं कथमिह संग विसंगं सत्यं कथमिह रंगविरङ्गम् ॥८॥

पदच्छेद

केवलतत्त्वनिरञ्जनसर्वम्, गगनाकारनिरन्तर शुद्धम्, एवम्, कथम्, इह, संगविसंगम्, सत्यम्, इह, रंगविरङ्गम् ॥

पदार्थ ।

केवलतत्त्वनिरञ्जन सवम्	केवल आत्म तत्त्व ही माया मल से रहित सवरूप है	इह = इस आत्मा में
		संगविहंगम् — सत्संग और विरुद्ध कुसंग
		कथम् = कैसे वन सकता है
गगनाकारनिरन्तरशुद्धम्	आकाशवत् एकरस वह शुद्ध है	सत्यम् = सत्य
		रंगविरङ्गम् = रंग और विलक्षण रंग ।
एवम् = ऐसे होने पर		

योगवियोगै रहितो योगी भोगविभोगै रहितो भोगी ।
एवं चरति हि मन्दंमन्दं मनसा कल्पित सहजानन्दम् ॥९॥

पदच्छेद

योगवियोगैः, रहितः, योगी, भोगविभोगैः, रहितः, भोगी, एवम्, चरति, हि मन्दमन्दम्, मनसा कल्पितसहजानन्दम् ॥

पदार्थ

योगी = आत्मतत्त्व में मग्न योगी
योगवियोगः = संयोग और वियोग से
रहितः = रहित है और
भोगवि } विहित भोग से
भोगः } और अविहित भोगसे
रहितः = रहित हुआ
एवम् = इस प्रकार का योगी

मनसा = मन द्वारा
कल्पित } कल्पित
सहजानन्दम् } सहजानन्द को
हि = निश्चित रूप के
मन्दम् = धीरे
चरति = विचरता है अर्थात आत्मानन्द को प्राप्त होता है।

बोधविबोधैः सततं युक्तो द्वैताद्वैतैः कथमिह मुक्तः।
सहजो विरजाः कथमिह योगी शुद्धनिरञ्जन समरसभोगी ॥१०॥

पदच्छेद

बोधविबोधैः, सततम्, युक्तः, द्वैताद्वैतैः, कथम्, इह, मुक्तः, सहजः, विरजाः, कथम् इह, योगी, शुद्धनिरंजनसमर सभोगी ॥

पदार्थः

बोधविबोधैः=ज्ञान अज्ञान से
सततम=निरन्तर
युक्तः=युक्त हुआ
द्वैताद्वैतः=द्वैत और अद्वैत से युक्त हुआ
इह=इस संसार में
कथम्=किस प्रकार
मुक्तः=मुक्त होते हैं
इह=इस संसार में
योगी=योगी
सहजः=स्वभाव से ही
विरजाः=राग से रहित योगी
शुद्ध निरंजन समरसभोगी } शुद्ध माया-मल से रहित आत्मानन्द का ही भोक्ता है

तृतीय प्रकरण

आत्मा, अनात्मा तथा निर्गुण, सगुणब्रह्म

अंक १—जिसमें जल-सम्बन्धी नित्यत्व हो और जो सदा एक रस परिपूर्ण हो, उसको समुद्र कहते हैं। जो समुद्र से उत्पन्न हो और समुद्र में लीन हो जावे, उसको तरंग कहते हैं। इसी प्रकार जिसमें नित्यत्व हो और जो सदा एकरस परिपूर्ण हो, उसको आत्मा अर्थात् निर्गुण ब्रह्म कहते हैं। इसी प्रकार जो आत्मा से उत्पन्न हो और आत्मा में लीन हो जावे, उसको अनात्मा अर्थात् सगुण ब्रह्म कहते हैं।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सदा एकरस परिपूर्ण है, इसलिए शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द आत्मा अर्थात् निर्गुण ब्रह्म है। परा प्रकृति, अपरा प्रकृति, विकृति रूप अनन्त पदार्थ तथा करण, कर्म; भोग, भोग्य; ज्ञान, ज्ञेय; दर्शन, दृश्य आदि क्रम २ से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से उत्पन्न हुए हैं, और वे सब क्रम २ से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में लीन होंगे, इसलिए परा प्रकृति, अपरा प्रकृति, विकृति रूप अनन्त पदार्थ तथा करण, कर्म; भोग, भोग्य; ज्ञान, ज्ञेय; दर्शन, दृश्य अनात्मा अर्थात् सगुण ब्रह्म है। जैसे समुद्र नित्य है, और

तरङ्ग के स्थिति-काल में तरङ्ग को असत्य नहीं कह सकते हैं कि अन्त में तरङ्ग समुद्र में लीन होगी: वास्तव में तरङ्ग को सत्य असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय कहेंगे। वैसे ही आत्मा नित्य है, और अनात्मा सत्य असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय है।

अंक २—शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द समुद्र रूप है, अर्थात् आत्मा में केवल एक अभिन्न अंश शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है, जो समुद्र रूप है। किन्तु परमात्मा, जीवात्मा में दो अंश हैं, एक अंश शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है; दूसरा अंश उसका चिदाभास है। परमात्मा का चिदाभास माया अर्थात् शुद्ध सतोगुण उपाधि के कारण है, और जीवात्मा का चिदाभास मूलाज्ञान अर्थात् मलीन सतोगुण उपाधि के कारण है, इसलिए यहां यह प्रश्न होता है कि परमात्मा, जीवात्मा का चिदाभास समुद्ररूप होगा या तरङ्गरूप होगा ?

यद्यपि चिदाभास मूलमाया, मूलाज्ञान के कारण है और मूलमाया तथा मूलाज्ञान अन्त में आत्मा अर्थात् शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में लीन हो जायँगे, इसलिए चिदाभास भी आत्मा में लीन हो जावेगा, तथापि चिदाभास को तरङ्ग रूप नहीं कह सकते हैं, क्योंकि जब केवल एक अभिन्न अंश शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द समुद्ररूप है तो परमात्मा, जीवात्मा के दो अंश होने पर भी शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द समुद्र रूप है। इसलिए चिदाभास अंश किसी प्रकार से तरङ्गरूप नहीं हो सकता है।

जिज्ञासु को स्मरण रखना चाहिए कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सदा एकरस परिपूर्ण अकर्त्ता, अभोक्ता है। किन्तु परमात्मा के चिदाभास अंश में माया की सङ्गति से कर्त्तापन और ज्ञातापन आदिक है, इसलिए परमात्मा का चिदाभास अंश अर्थात् ईश्वर आदि स्थूल, सूक्ष्म सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय के सब नियमों को नियत करने वाला है।

यद्यपि परमात्मा के चिदाभास अंश में कर्त्तापन, ज्ञातापन आदिक है, तथापि परमात्मा के चिदाभास अंश में कर्त्तव्य और निश्चय नहीं है। कर्त्तव्य और निश्चय माया का धर्म है, इसलिए परमात्मा का चिदाभास अंश, अर्थात् ईश्वर, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदिक सब के नियमों को नियत करता हुआ भी असंग, अलिप्त है।

इसी प्रकार जीवात्मा के चिदाभास अंश अर्थात् जीव में अन्तःकरण और ज्ञानेन्द्रिय की सङ्गति से कर्त्तापन और भोक्तापन है; किन्तु जीव में कर्त्तव्य और भोक्तव्य नहीं है। कर्त्तव्य बुद्धि कर्मेन्द्रिय का और भोक्तव्य बुद्धि ज्ञानेन्द्रिय का धर्म है। इसलिए जीव सब कर्म करता हुआ बुद्धियोग अथवा कर्मयोग की सिद्धि से असंग, अलिप्त हो जाता है।

अंक ३—जैसे समुद्र और तरंग जल रूप है अर्थात् जल ही जल है, वैसे ही समुद्ररूप आत्मा और तरंगरूप अनात्मा

सब चेतन ही चेतन है। प्रकरण अंक १ के अंक ४ (ख) में पहले ही कहा जा चुका है कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द निर्विशेष चेतन है ईश्वर, जीव विशेष चेतन है और सब अनात्मा सामन्य चेतन हैं।

यद्यपि परमार्थिक ज्ञान के लक्ष्य से आदि, मध्य, अन्त में केवल चेतन आत्मा अपने आप है (देखो प्रकरण सं० १ में अंक ३ ख, ग) तथापि परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म-विचारयुक्त-व्यवहारिक ज्ञान के लक्ष्य से ईश्वर, जीव तथा सब माया आदिक अनात्म वस्तुओं का अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है। साथ ही माया आदिक वस्तुओं का रूप, सब अनात्म गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म पृथक २ है। इसलिए जैसे वायु में विशेषरूप, सामान्यरूप का दरजा विशेष हो सकता है वैसे ही जीव में विशेष चेतन का और अनात्मा में सामान्य चेतन का दरजा विशेष हो सकता है। परा प्रकृति की भिन्नताके कारण जीव में विशेष चेतन का अन्तर प्रत्यक्ष अनुभव से प्रमाणित होता है। इस कारण चींटी से ब्रह्मदेव तक व्यक्तिगत जीव में विशेष चेतन का दरजा विशेष है और अन्तः करण की अपेक्षा ज्ञानेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय की अपेक्षा कर्मेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय की अपेक्षा स्थूल शरीर में, स्थूल शरीरमें भी वीर्य, बाल, नख आदिक में, तथा आगे भी इसी प्रकार माया की अपेक्षा आकाश, आकाश की अपेक्षा वायु, वायु की अपेक्षा अग्नि, अग्नि की

अपेक्षा जल, जलकी अपेक्षा पृथिवी में; तथा इसी प्रकार और आगे चल कर विकृति रूप सब पदार्थों में सामान्य चेतन का अन्तर प्रत्यक्ष अनुभव से प्रमाणित होता है। इससे सिद्ध है कि विशेष चेतन और सामान्य चेतन का दरजा विशेष है किन्तु सब चेतन ही चेतन हैं।

साधन

आत्मा अर्थात् निर्गुणब्रह्म और अनात्मा अर्थात् सगुण ब्रह्म चेतन ही चेतन हैं, इसलिए सब ब्रह्म है।

आत्मा-अनात्मा-विचार के तात्पर्य को दूसरी शैली से अवधूतगीता के दूसरे अध्याय के श्लोक संख्या ८, ९ में कहा है—

महदादीनि भूतानि समाप्यैवं सदैव हि।
मृदुद्रव्येषु तीक्ष्णेषु गुडेषु कटुकेषु च ॥८॥
कटुत्वं चैव शैत्यत्वं मृदुत्वं च यथा जले।
प्रकृतिः पुरुषस्तद्वदभिन्नं प्रतिभाति मे ॥९॥

पदच्छेद

महदादीनि, भूतानि, समाप्य, एवम्, सदा, एव, हि, मृदुद्रव्येषु, तीक्ष्णेषु, गुडेषु, कटु केषु च ॥८॥

कटुत्वम्, च, एव, शैत्यत्वम्, च, यथा जले प्रकृतिः पुरुषः, तद्वत, अभिन्नम, प्रतिभाति, मे ॥९॥

पदार्थ

महदादीनि=महत्तत्त्व आदि
भूतानि=भूतों को
सदैव=सब काल
हि=निश्चित रूप से
एवम्=इस प्रकार
समाप्य=समाप्त करके
मृदुद्रव्येषु=मृदु द्रव्यों में
च=और
तीक्ष्णेषु=तीक्ष्ण द्रव्यों में
गुडेषु=गुड में
कटुकेषु=कटु द्रव्यों में
कटुत्वम्=कटुरस
चैव=और निश्चय पूर्वक
शैत्यत्वम्=शीतता
च=और
मृदुत्वम्=कोमलता
यथा=जिस प्रकार
जले=जल में अभिन्न प्रतीत होते हैं।
तद्वत्=तैसे ही
प्रकृतिः=प्रकृति
पुरुषः=पुरुष
मैं—मुझको
अभिन्नम्=अभेद ही
प्रतिभाति=भान होता है

चतुर्थ प्रकरण

योग और सांख्ययोग अर्थात बुद्धियोग तथा कर्मयोग

अंक १—योग के भावार्थ बहुतेरे हैं। युक्त होने को योग कहते हैं। जिस उपाय से अन्तःकरण का विषयों से निरोध हो उसको योग कहते हैं: विषय-वासना और "इदं, अहं, मम, त्व" से वियोग होने को योग कहते हैं, जीव ब्रह्म की एकता के निमित्त ज्ञान-साधन को योग कहते हैं, जीवात्मा के परमात्मा में तदाकार तद्रूप होने को योग कहते हैं, अत्यन्त दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति जिस साधन से हो उसको योग कहते हैं, तूलाज्ञान के कारण जो शून्यरूप भाव है तथा मूलाज्ञान के कारण जो भाव है उन सब प्रकार के भावों से हृदय नग्न होकर जिस साधन से अनुभव-गम्य ज्ञान का साक्षात्कार करे उसको योग कहते हैं। इसलिए सांख्ययोग अर्थात बुद्धियोग अथवा कर्मयोग, भक्तियोग अथवा राजयोग, ज्ञानयोग—ये सब साधन हैं।

अङ्क २—नेती, धोती, नेत्रजो, कपाली आदिक तथा प्राणायाम आदिक हठयोग के अन्तर्गत हैं। प्राणायाम परमार्थ-साधन में सहायक हो सकता है। किन्तु प्राणायाम आदिक द्वारा विशेष रूप से आत्मज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान से शून्य सुषुप्ति अवस्था के

अनुसार जड़ समाधि की सिद्धि प्राप्त होती है, अथवा उनके द्वारा आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

अंक ३--श्रीमद्भगवद्गीता के १८ वें अध्याय का १८ वां श्लोक इस प्रकार है—

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्म संग्रहः ॥१८॥

उक्त श्लोक का तात्पर्य यह है कि ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय तीनों कर्म के प्रेरक हैं, अर्थात् इन तीनों के संयोग से कर्म में प्रवृत्त होने की इच्छा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार कर्ता, करण और क्रिया ये तीनों कर्म के संग्रह हैं, अर्थात् इन तीनों के संयोग से कर्म बनता है।

प्रकरण (सं० १ के अंक ३ (क) में वर्णन किया गया है कि ज्ञाता और कर्त्ता जीवात्मा का चिदाभास है, ज्ञान बुद्धि है, अज्ञानी प्राणी के लिए पदार्थ पृथक २ ज्ञेय हैं, अर्थात जो वस्तु जानी जावे वह ज्ञेय है, बुद्धि और स्थूल शरीरयुक्त कर्मेन्द्रिय करण है तथा जिस कार्य के लिए क्रिया की जावे वह कर्म है। इससे सिद्ध हुआ कि. ज्ञाता, कर्ता चिदाभास है और ज्ञान, करण बुद्धि है अर्थात ज्ञाता ज्ञान, ज्ञेय और कर्ता, करण, कर्म के सम्बन्ध में एक ही चिदाभास ज्ञाता और कर्ता है और एक ही बुद्धि ज्ञान और करण है। साथ ही ज्ञेय और कर्म में भिन्नता है, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि जैसा ज्ञेय का स्वरूप होगा वैसा ही कर्म का स्वरूप होगा। इसलिए कर्मयोग साधन

में ज्ञेय का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे चिदाभास की विषय-वासना और उसके "इदं, अहं, मम, त्वं" का त्याग हो जावे। कर्मयोग की सिद्धि के बिना विषय-वासना और "इदं, अहं, मम, त्वं" का त्याग नहीं हो सकता है, क्योंकि कर्मयोग-साधन में ज्ञेय के स्वरूप के सम्बन्ध में सब के प्रति ब्रह्म भाव होना सम्भव है। इस ब्रह्मभाव के विकास पाने से चिदाभास द्वारा विषय-वासना और "इदं, अहं, मम त्वं" का त्याग अपने आप हो जावेगा।

अंक ४—"इदं, अहं मम, त्वं" के कारण प्राणियों को मूल-ब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्य ब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में स्त्री, पुत्र आदिक भावना और कार्यब्रह्म रूप पदार्थों में विषय-भावना होती है। इसलिए प्राणियों को जो अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का आभास-आनन्द अनुभव होता है, वह आनन्द स्त्री, पुत्र आदिक और विषयों में भ्रान्तिज्ञान के कारण प्रतीत होता है, जिससे प्रेरित होकर प्राणी नाना प्रकार का कर्म करता है। किन्तु इन सभी कर्मों के द्वारा ज्ञेय के सम्बन्ध में ब्रह्मभाव होना सम्भव नहीं है। यदि स्वाभाविक कर्म के अतिरिक्त शास्त्र-विहित कर्म सकाम या निष्काम किया में जावे तो उसके द्वारा भी ज्ञेय के स्वरूप के सम्बन्ध में ब्रह्म-भाव होना सम्भव नहीं है। क्योंकि कोई कर्म सकाम या निष्काम बिना हेतु नहीं हो सकता है, सकाम कर्म का हेतु लोक या परलोक की कामना है, निष्काम कर्म का हेतु केवल आत्मा तथा

परमात्मा की प्रीति है किन्तु जिस प्राणी को आत्मा में प्रीति, आत्मा में तृप्ति, आत्मा में संतोष है। उसको कोई कर्तव्य नहीं है, (देखो इसी अंक के अन्त में, नीचे, श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय का १७ वाँ श्लोक) इससे सिद्ध होता है कि यथार्थ में निष्काम कर्म का रूप मानसिक कर्म प्रीतियुक्त आत्मा तथा परमात्मा का चिन्तन और स्मरण है; क्योंकि आत्मा तथा परमात्मा स्वयं सच्चिदानन्द स्वरूप है, इनमें आनन्द के लिए अपने से भिन्न अन्य किसी की अधीनता नहीं है, इसलिए आत्मा, परमात्मा का चिन्तन और स्मरण निष्काम कर्म का रूप है। शास्त्रों में वर्तमान जन्म तथा अज्ञात जन्म के भीतर अनात्म वस्तु तथा लोक, लोकान्तर में भोग और पद-विहित कर्म का फल निश्चित है और यह सब स्वयं केवल चेतन स्वरूप है, जिससे इन सब में आनन्द के लिए अपने से परे आत्मा, परमात्मा की पराधीनता है। इसलिए आत्मा, परमात्मा के चिन्तन और स्मरण के अतिरिक्त शास्त्रविहित कर्म निष्काम कर्म का रूप नहीं हो सकता है। उक्त श्लोक नीचे दिया जाता है-

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

अङ्क ५—जैसे प्राणियों को दुःख-सुख भोग में प्रारब्धयोग का सम्बन्ध होता है, वैसे ही एक कुल में एकत्र होने में भी प्रारब्ध-योग का सम्बन्ध होता है। इसलिए प्राणियों के एक कुल में एकत्र होने को जिज्ञासु ईश्वर-सृष्टि की प्रणाली जाने।

श्रीमद्भगवद्गीता में चौथे अध्याय के २४ वें श्लोक का भावार्थ यह है कि कोई तो इस भाव से यज्ञ करते हैं कि अर्पण अर्थात् स्तुति आदिक भी ब्रह्म है, हवि अर्थात् हवन करने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है और ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मरूप कर्त्ता के द्वारा जो हवन किया गया है वह भी ब्रह्म ही है, इसलिए ब्रह्मरूप कर्म में समाधिस्थ हुए उस पुरुष द्वारा जो प्राप्त होने योग्य है वह भी ब्रह्म ही है।

यदि कर्मयोगी इस भाव से स्वाभाविक कर्म करे कि ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; कर्ता, करण, कर्म भी ब्रह्म है, जिस हेतु तथा जिस प्राणी निमित्त कर्म किया जाता है वह भी ब्रह्म रूप है, कर्मयोगी स्वयं भी ब्रह्म रूप है, और ब्रह्म रूप कर्म में उस पुरुष द्वारा कर्मयोग की जो सिद्धि प्राप्त होने योग्य है, वह भी ब्रह्म ही है तो यह कर्मयोग हो जावेगा। उक्त श्लोक इस प्रकार है—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म—समाधिना ॥२४॥

अङ्क ६—यथार्थ में जब तक बुद्धि त्रिगुणात्मक अहंकार, मोह, वासना के कारण मूलाज्ञान के अधीन रहती है, तब तक मूलाज्ञान की प्रेरणा के अनुसार कर्तव्य को निश्चित करती है। बुद्धि के निश्चित किये हुए अनुसार चिदाभास कर्मों का कर्ता होता है और इसी प्रकार भोगों का भोक्ता भी होता है। किन्तु चिदाभास में स्वयं कर्त्तापन, भोक्तापन नहीं है। कर्त्तापन, बुद्धि और स्थूल शरीर युक्त

कर्मेन्द्रिय में है; भोक्तापन बुद्धि और मनयुक्त ज्ञानेन्द्रिय में है। इसलिए कर्मयोगी बुद्धि और स्थूल शरीरयुक्त कर्मेन्द्रिय द्वारा स्वाभाविक कर्म करता रहे और मनयुक्त ज्ञानेन्द्रिय का जो भोक्ता का स्वभाव है उससे चिदाभास असंग और अलिप्त होकर देखता रहे। इसी तात्पर्य को श्रीमद्भगवद्गीता के पाँचवें अध्याय के श्लोक संख्या ८. ६ में कहा है, अर्थात् तत्व को जानने वाला सांख्ययोगी देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, सवों से लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ, आँखों को खोलता और मींचता हुआ भी मन में केवल इस प्रकार समझे कि सब इन्द्रियाँ अपने २ व्यापार में लगी हैं, निःसन्देह ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ। उक्त श्लोक इस प्रकार हैं—

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्ववित्।
पश्यन्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन्॥ ८॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्॥ ९॥

जब कर्मयोगी की बुद्धि गुणातीत हो जाती है तो बुद्धि शुद्ध विचार के अनुसार कर्तव्य को निश्चित करती है। गुणातीत बुद्धि के निश्चित किए हुए कर्मों का कर्ता होने पर भी चिदाभास उनसे असंग, अलिप्त रहता है।

किन्तु जब तक जिज्ञासु के हृदय में ज्ञेय के स्वरूप के सम्बन्ध में सब में ब्रह्मभाव जाग्रत नहीं होगा तब तक उस की बुद्धि का गुणातीत होना सम्भव नहीं है। इसलिए जिज्ञासु को चाहिए कि कर्मयोग का साधन प्रारम्भ करने के पूर्व इसी अंक के अन्त में नीचे परमार्थिक ज्ञानसे अभिन्न अध्यात्म-विचारयुक्त-व्यवहारिक ज्ञान की जो मुद्रा लिखी गयी है उसका मनन करके ध्यान और लक्ष्य द्वारा हृदयगत ज्ञान प्राप्त करे। उसका बोध होने से जो मूलब्रह्म; कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में तूला-ज्ञान के कारण शून्यरूप स्त्री पुत्र आदिक भाव हैं, और कार्य-ब्रह्म में विषय भाव है, उससे जिज्ञासु का हृदय नम्र हो जायगा और स्त्री, पुत्र आदिक में, विषय पदार्थों में तथा ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; कर्ता, करण, कर्म में ब्रह्मभाव जाग्रत हो जायगा। जिज्ञासु के हृदयके भीतर सब के प्रति ब्रह्मभाव जाग्रत होने से विषय-वासना और "इदं, अहं, मम, त्वं" का त्याग अपने आप हो जावेगा, और कर्मयोग की सिद्धि बहुत जल्द होगी।

परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न अध्यात्म-विचारयुक्त-व्यवहारिक ज्ञानकी मुद्रा नीचे दी जाती है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; कर्ता, करण, कर्म तथा मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी चेतन ब्रह्मस्वरूप है, अर्थात सब ब्रह्म है।

अंक ७—तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥ १६॥

श्रीमद्भगवद्गीताके १८ वें अध्याय के उपरिलिखित श्लोक

का भावार्थ यह है कि जो पुरुप असुर-बुद्धि होने के कारण केवल शुद्ध स्वरूप आत्मा को कर्ता देखता है वह मलीन बुद्धि वाला अज्ञानी यथार्थ नहीं देखता है—

श्रीमद्भगवद्गीता का १७ वाँ श्लोक इस प्रकार है—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमांल्लोकान्न हन्ति न निवध्यते ॥ १७ ॥

इस का भावार्थ यह है कि जिस पुरुप के अन्तःकरण में "मैं करता हूँ", ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थों और सम्पूर्ण कर्मों में लिप्त नहीं होती, वह पुरुप इस लोक को मार कर भी वास्तव में न तो मारता है न पाप से बँधता है ।

नीचे श्रीमद्भगवद्गीता के चौथे अध्याय के श्लोक संख्या १३, १४ जिज्ञासु के विचारार्थ प्रस्तुत करता हूँ—

चातुर्वर्ण्यं मयासृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफलस्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥

१३वें श्लोक का भावार्थ यह है कि गुण और कर्मों के विभाग से चार वर्ण मेरे द्वारा रचे गये हैं । मुझ अविनाशी परमेश्वर उनके कर्ता को भी तू अकर्ता ही जान ।

१४ वें श्लोक का भावार्थ यह है कि इस कारण कि कर्मों के फल में मेरी स्पृहा नहीं है, कर्म मुझे अपने में आसक्त नहीं

बना सकते; इस प्रकार जो मुझको तत्त्व से जानता है वह भी कर्मों से नहीं बँधता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के ३८ वें तथा चौथे अध्याय के जो श्लोक ऊपर दिए गए हैं उनके तात्पर्य का कुछ स्पष्टीकरण यहाँ आवश्यक जान पड़ता है। हम पहले ही कह आये हैं कि जैसे आदि, अन्तमें परमात्मा तथा जीवात्मा का स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा, अकर्त्ता, अभोक्ता है, वैसे ही मध्य में आत्मा अकर्त्ता अभोक्ता है। किन्तु केवल मध्य में परमात्मा का चिदाभास अर्थात् प्रतिबिम्ब माया की सङ्गति से सृष्टि आदिक का कर्म करता हुआ असङ्ग, अलिप्त है, और जीवात्मा का चिदाभास अर्थात् प्रतिबिम्ब अज्ञान तथा अन्तःकरण आदिक की सङ्गति का कर्ता और भोगों का भोक्ता है। इसलिए कर्मयोग का साधन इस प्रकार है कि "मैं प्रतिबिम्ब रूप से कर्मों को करता हुआ असंग, अलिप्त तथा बिम्बरूप से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अकर्त्ता, अभोक्ता हूँ"।

अंक ८—जैसे गृहस्थ कर्मयोग का अधिकारी है, वैसे ही विरक्त पुरुष भी बुद्धियोग का अधिकारी है। यदि विरक्त पुरुष स्वाभाविक कर्म से रहित है, तो उसका विषय में लिप्त होना उतना ही संभव है जितना गृहस्थ का। इसलिए कर्मयोग साधन से बुद्धियोग के साधन में थोड़ा अन्तर है।

कर्मयोगी और बुद्धियोगी को चाहिए कि, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि का साधन करके ध्यान और लक्ष्य द्वारा उसका हृदयगत ज्ञान प्राप्त करे।

कर्मयोग साधन

"मैं प्रतिबिम्बरूप से कर्म करता हुआ असंग, अलिप्त तथा बिम्बरूप से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अकर्ता, अभोक्ता हूँ"।

बुद्धियोग साधन

"मैं प्रतिबिम्बरूप से असंग, अलिप्त तथा बिम्बरूप से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अकर्ता, अभोक्ता हूँ"।

जीवात्मा का स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा अभोक्ता है, इस तात्पर्य को अवधूतगीता के पहिले अध्याय के श्लोक सं० ६५, ६६ में और तीसरे अध्याय के श्लोक सं० १८, १९ में दूसरी शैली से कहा है।

नाहं कर्ता न भोक्ता च न मे कर्म पुराधुना।
न मे देहो विदेहो वा निर्ममेति ममेति किम् ॥६५॥

पदच्छेद

न अहम्, कर्ता, न भोक्ता, च, न, मे, कर्म, पुरा,
अधुना, न, मे, देहः, विदेहः, वा, निर्मम, इति,
मम, इति, किम् ॥

पदार्थः

अहम=मैं	मे=मेरा
कर्ता=कर्मों का कर्ता	देहः=देह सहित भी
न=नहीं हूँ	वा=अथवा
च=और उनके फलों का	विदेहः=मैं देह से रहित भी नहीं हूँ
न=नहीं हूँ	निर्ममति=ममता से रहित
मे कर्म=मेरे कर्म	ममति=ममता के सहित
पुराऽधुना=पूर्व और अब	किम=कैसे मैं हो सकता हूँ
न=नहीं है	

न मे रागादिको दोषो दुःखं देहादिकं न मे।
आत्मानं विद्धि मामेकं विशालं गगनोपमम् ॥६६॥

पदच्छेद

न, मे, रागादिकः, दोषः, दुःखम्, देहादिकम्,
न, मे, आत्मानम्, विद्धि, माम्, एकम्,
विशालम्, गगनोपमम् ॥६६॥

पदार्थ

रागादिकः=रागादिक	माम्=मुझको
दोषः=दोष भी	आत्मानम्=आत्मारूप और
मे न=मेरे नहीं है	एकम्=एक
दुःखम्=दुःख रूप	विशालम्=विस्तार वाला
देहादिकम्=देहादिक भी	गगनोपमम्=आकाश के तुल्य
मे न=मेरे नहीं हैं	विद्धि=तू जान

यदि जिज्ञासु उक्त दोनो श्लोकों को मिलाकर देखेगा तो उसे लक्षित होगा कि उनका तात्पर्य केवल स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा के सम्बन्ध में है।

निर्भिन्नाभिन्नरहितं परमार्थतत्त्व—
मन्तर्बहिर्न हि कथं परमार्थतत्त्वम्।
प्राक्संभवं न च रतं न हि वस्तु किञ्चि—
ज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥१८॥

पदच्छेद

निर्भिन्नभिन्नरहितम्, परमार्थतत्त्वम्, अन्तर्बहिः, न, हि, कथम्, परमार्थतत्त्वम्, प्राक्संभवम्, न, च, रतम्, न, हि, वस्तु, किञ्चित्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थ

निर्भिन्नभिन्न रहितम् = यह आत्मा भेदन क्रिया का न कर्म है न कर्ता है।
परमार्थ तत्त्वम् = किन्तु परमार्थ स्वरूप है, परमार्थ सार है, भेद से रहित है।
प्राक्संभवम् = पूर्व होना फिर न होना, यह बात भी
न च = उसमें नहीं है।
रतम् = किसी में वह लिप्त भी
नहि = नहीं है।
वस्तु किञ्चित = आत्मा से अतिरिक्त और कोई भी वस्तु
कथम् = किसी प्रकार से भी
अन्तर्बहिः = भीतर बाहर किसी के भी
न हि = वह नहीं है, क्योंकि वही
ज्ञानामृतम् = ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
समरसम् = एकरस
गगनोपमः = गगन की उपमा वाला
अहम् = सोई आत्मा मैं हूँ।

रागादिदोषरहितं त्वहमेव तत्त्वं
दैवादिदोषरहितं त्वहमेव तत्त्वम्।
संसारशोकरहितं त्वहमेव तत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥१९॥

पदच्छेद

रागादिदोषरहितम्, तु, अहम्, एव, तत्त्वम्,
दैवादिदोषरहितम्, तु, अहम्, एव, तत्त्वम्,
संसार शोक रहितम्, तु, अहम्, एव, तत्त्वम्।
ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम्॥

पदार्थः

रागादिदोषरहितम् = रागादिदोषों से रहित
तु अहम = पुनः मैं ही
एव = निश्चित रूप से
तत्त्वम् = तत्त्व हूँ
तु अहम = पुनः मैं ही
दैवादिदोषरहितम् = दैवादि दोष से रहित हूँ
तत्त्वम् = तत्त्व हूँ
तु अहम = पुनः मैं ही
एव = निश्चय पूर्वक
संसारशोकरहितम् = संसार-शोक से रहित
तत्त्वम् = तत्व हूँ
अहम् = मैं ही
ज्ञानामृतम् = ज्ञानामृतरूप
समरसम = एकरस
गगनोपमः = गगनवत् हूँ।

पंचम प्रकरण

"एकोऽहम् वहुस्यामि"

अंक १—शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द की ओर से वेद का महावाक्य है—

"एकोऽहम् वहुस्यामि।"

इसका अभिप्राय यह है कि मैं एक हूँ, किन्तु अनन्त रूप धारण करता हूँ।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सदा एकरस परिपूर्ण है, निर्गुण है, और सजातीय, विजातीय❀ सर्वगत* भेद से रहित है, तो कैसे एक से अनन्त रूप धारण हो सकता है?

यथार्थ में निर्गुण रूप से अनन्त रूप धारण नहीं हो सकता है।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में दो लक्षण हैं, स्वरूप लक्षण, और तटस्थ लक्षण (देखो प्रकरण सं० १ का अंक ४ ख)।

अंक २—स्वरूप-लक्षण से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द ने

❀मनुष्य-योनि में एक मनुष्य के लिए दूसरा मनुष्य सजातीय है।

*मनुष्य-योनि से सिंह आदिक की योनि विजातीय है। एक ही शरीर में हाथ पैर अंगुली बाल आदिक में सर्वगत भेद है।

सदा एकरस परिपूर्ण रह कर तथा तटस्थ लक्षण से अधिष्ठान चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता से अनात्मा में अनन्त रूप, अनन्त गुण, अनन्त स्वभाव, अनन्त शक्ति कर्म परिवर्तन के धर्म से युक्त करके धारण किया है (देखो प्रकरण सं० १ का अंक ४ ख)।

यह प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है कि अनात्मा में अनेक प्रकार के अन्न, अनेक प्रकार के फल, अनेक प्रकार के फूल, अनेक प्रकार की औषधियाँ आदिक और समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म कारणशरीर आदिक अनन्त रूप, अनन्त गुण, अनन्त स्वभाव; अनन्त शक्ति, कर्म परिवर्तन के धर्म से युक्त होकर धारण किये गये हैं। अर्थात् एक ही वस्तु की अवस्था बदलने से रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म बदल जाता है। उदाहरण के लिए आम की छोटी कली का जो रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति है, वह उसके बड़े होने की अवस्था के रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति से भिन्न होता है, और पकने पर उस आम का रूप, गुण, स्वभाव शक्ति और भी बदल जाता है; इसी प्रकार बहुतेरे पदार्थों में पाया जाता है।

व्यक्तिगत प्राणियों की हरएक योनि का रूप, गुण, स्वभाव शक्ति कर्म पृथक २ है; मनुष्य के अन्तःकरण की अवस्था कर्मयोग अथवा बुद्धियोग, भक्तियोग अथवा राजयोग और ज्ञानयोग के साधन से बदल जाती है। आयु के भेद से भी रूप, गुण स्वभाव, शक्ति, कर्म बदल जाता है। उदारण के लिए

लड़कपन में जो रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म रहता है, वह रूप गुण स्वभाव शक्ति कर्म युवा होने पर बदल जाता है; इसी प्रकार युवावस्था के अनन्तर वृद्धावस्था आने पर रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म बदल जाता है।

हर प्रकार से सिद्ध है कि स्वरूप-लक्षण से शुद्ध चेतन पर-ब्रह्म सच्चिदानन्द सदा एकरस परिपूर्ण रहता हुआ तटस्थ-लक्षण से अधिष्ठान चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता से अनात्मा में अनन्त रूप, अनन्त गुण, अनन्त स्वभाव, अनन्त शक्ति, कर्म परिवर्तन के धर्म से युक्त करके पृथक २ धारण करना है। इसलिए शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय और सर्वात्मा है।

अंक ३—कहा जा चुका है कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदा-नन्द सर्वमय सर्वात्मा है। साथ ही प्रकरण सं० १ के अंक ३ (क) में यह व्याख्या की गयी है कि जैसे ही महाकाशरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात् आत्मा है; वैसे ही मेघाकाशरूप परमात्मा और जलाकाशरूप जीवात्मा है। इसलिए परमात्मा जीवात्मा के चिदाभास को अधिकार है कि "मैं शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय सर्वात्मा हूँ" इस भाव का साधन करके सिद्धि प्राप्त करे। किन्तु परमात्मा के चिदाभास को तो स्वयं अपने आप यह सिद्धि है कि "मैं शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय सर्वात्मा हूँ";

रहा जीवात्मा का चिदाभास; सो उसको साधन करके उक्त सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए।

इसी तात्पर्य को दूसरी शैली से अवधूतगीता के तीसरे अध्याय के २३ वें और ६ठें श्लोक में तथा सातवें अध्याय के सातवें श्लोक में कहा है—

शुद्धं विशुद्धमविचारमनन्तरूपं
निर्लेपलेपमविचार मनन्तरूपम्।
निष्खण्डखण्डमविचारमनन्तरूपं।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२३॥

पदच्छेद

शुद्धम्, विशुद्धम्, अविचारम्
अनन्तरूपम, निर्लेपलेपम, अविचारम्,
अनन्तरूपम्, निष्खण्डखण्डम्,
अविचारम्, अनन्तरूपम्, ज्ञानामृतम्,
समरसम्, गगनोपमः, अहम्।

पदार्थ

शुद्धम् = शुद्ध है
विशुद्धम् = विशेष करके शुद्ध है
अविचारम् = विचार से रहित है
अनन्तरूपम् = अनन्त रूप है

निष्खण्ड खण्डम् = नाश से भी वह रहित है
अविचारम् = विचार से रहित है
अनन्तरूपम् = अनन्त रूप भी है

निर्लेप- लेपम् } =निर्लेप हो करके भी सम्बन्ध वाला है	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
अविचारम्=विचार से रहित है	समरसम्=एकरस
अनन्तरूपम्=अनन्तरूप है	गगनोप- मोऽहम् } =गगन की उपमा वाला मैं हूँ

स्थूलं हि नो नहि कृशं न गतागतं हि
आद्यन्तमध्यरहितं न परापरं हि।
सत्यं वदामि खलु वै परमार्थ तत्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥६॥

पदच्छेद

स्थूलम्, हि नः, न, हि, कृशम्, न,
गतागतम्, हि, आद्यन्तमध्यरहितम,
न, परापरम, हि, सत्यन् वदामि,
खलु, वै परमार्थतत्वम, ज्ञानामृतम,
समरसम, गगनोपमः, अहम ॥

पदार्थ

न=हमारा आत्मा	न परापरम्=पर अपररूप भी नहीं
हि=निश्चयपूर्वक	खलु=निश्चित रूप से
स्थूलम्=स्थूल	सत्यम्=सत्य को ही
नहि=नहीं है	वदामि=मैं कहता हूँ
कृशम्=कृश, सूक्ष्म	परमार्थतत्त्वम्=परमार्थतत्त्व स्वरूप मैं हूं
न गतागतम्=गमनागमनवाला भी नहीं है	

आद्यंतमध्य रहित = आदि, अन्त और मध्य से भी रहित है

हि = निश्चित रूप से

ज्ञानामृतम् = ज्ञानरूपी अमृत हूँ और

समरसम् = एकरस हूँ

गगनोपमोऽहम् = आकाश की उपमा वाला मैं हूँ

केवल तत्त्वनिरन्तरसर्वं योगवियोगौ कथमिह गर्वम् ।
एवं परमनिरन्तरसर्वमेवं कथमिह सारविसारम् ॥७॥

पदच्छेद

केवल तत्त्वनिरन्तरसर्वम्, योगवियोगौ, कथम्, इह, गर्वम्, एवम्, परमनिरन्तरसर्वम्, एवम्, कथम्, इह, सारविसारम् ॥

पदार्थ

केवलतत्त्व-निरन्तरसर्वम् = केवल आत्म-तत्व ही एकरस स्वरूप है

योगवियोगौ = संयोग और वियोग का

इह = इस आत्मा में

गर्वम् = अहँकार

कथम् = कैसे बन सकता है

एवम् = इसी प्रकार

परमनिन्तर-सर्वम् = परमनिरन्तर सर्वरूप है.

एव = निश्चित रूप से

सारविसारम् = यह सार है यह असार है

कथम् = यह कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता है

षष्ठ प्रकरण

राजयोग आदि के साधन

अंक १—जो ज्ञान एक दूसरे से परे हो, उसे व्यतिरेक ज्ञान कहते हैं, जैसे ब्रह्माण्ड में पृथिवी से जल परे है, जल से अग्नि परे है, अग्निसे वायु परे है, वायु से आकाश परे है, आकाश से हिरण्यगर्भादि परे है, हिरण्यगर्भादि से मूलमाया परे है, मूलमाया से चिदाभास अर्थात ईश्वर परे है, ईश्वरसे स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द परे है, अर्थात् दोनों अंश चिदाभास और शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा है। इसी प्रकार पिण्ड में स्थूल शरीर से प्राण परे है, प्राण से कर्मेन्द्रिय परे है, कर्मेन्द्रिय से ज्ञानेन्द्रिय परे है, ज्ञानेन्द्रियों से जो अन्तःकरण की वृत्तियाँ हैं उनमें मन परे है, मन से बुद्धि परे है, बुद्धि से चित्त परे है, चित्तसे अहंकार परे है, अहंकार से मूलाज्ञान परे है, मूलाज्ञान से चिदाभास अर्थात् जीव परे है, जीव से स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द परे है, अर्थात् दोनों अंश चिदाभास और शुद्ध चेतन पर ब्रह्म सच्चिदानन्द जीवात्मा है।

व्यतिरेक ज्ञान का साधन

मैं स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर नहीं हूँ, अथवा स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर मेरा नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म शरीर अपराप्रकृति रूप

है, कारणशरीर परा प्रकृतिरूप है; इसलिए मैं असंग शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द हूँ।"

जिज्ञासु को चाहिए कि पहले व्यतिरेक ज्ञान के साधन का श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा हृदयगत ज्ञान प्राप्त करे, उसके पश्चात् अन्वयज्ञान अर्थात् परमार्थिक ज्ञान के द्वारा व्यतिरेक ज्ञान का संस्कार करे।

अन्वय ज्ञान का साधन इस प्रकार करना चाहिए—

"समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर तथा चिदाभास और स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द चेतन ब्रह्मस्वरूप है।"

जिज्ञासु अन्वय ज्ञान का श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा हृदयगत ज्ञान प्राप्त करे।

अङ्क २—जीवात्मा के चिदाभास को प्रसन्नता और चित्त की एकाग्रता के कारण अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द का जो आभास-आनन्द अनुभव होता है, वह उसको स्त्री-पुत्र आदिक तथा विषय पदार्थों में प्रतीत होता है। इसलिए चिदाभास अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से विमुख है, और मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में स्त्री, पुरुष, आदिक भावों से, तथा कार्यब्रह्म रूप पदार्थ में विषय भाव से आसक्त और लिप्त हैं। इस परिस्थिति में पड़ कर प्राणीमात्र राग, द्वेष, अहंता, ममता के बन्धन में हैं, और जो त्रिगुणात्मक मूलाज्ञान हृदयगत है उसके

तमोगुण, रजोगुण के धर्म काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य में ग्रस्त हो कर अत्यन्त मानसिक कष्ट भोगते हैं तथा आवागमन के चक्कर में घूमते हैं।

जिस प्राणी का चिदाभास विषयों और स्त्री, पुत्र आदि में आसक्त और लिप्त है, उसके उपाधिरूप अन्तःकरण की तमोगुण, रजोगुणविषयोन्मुख वृत्ति है। इसलिए वैसे प्राणी को अन्तःकरण की सतोगुणविषयोन्मुखी वृत्ति और सर्वव्यापक ईश्वर में प्रीति होने के लिए शिवलिंग तथा किसी अवतारिक पुरुष श्री रामचन्द्र पुरुषोत्तम तथा श्रीकृष्ण परमात्मा आदिक की मूर्ति में ईश्वर-भाव से नियम-पूर्वक ध्यान के साथ पूजा आदिक करनी चाहिए, और ईश्वर भाव से उनका नाम-स्मरण, कीर्तन, गुणानुवाद करना चाहिए। शिवलिंग तथा मूर्त्ति पूजा में विधि, भाव, प्रीति अवलम्ब है, इसलिए इसको भावभक्ति कहते हैं।

जब भावभक्ति-सम्पादन से अन्तःकरण की सतोगुण विषयोन्मुखी वृत्ति और ईश्वर में प्रीति हो जावे तो अपराभक्ति का सम्पादन करना चाहिए।

अंक ४--ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञआदि है। उसे हर स्थान में व्यापक जानकर जिज्ञासु को उसकी परमभक्ति में ऐसा लीन तथा ध्यानस्थ होना चाहिए कि उसे अपना आपा भी भूल जाय। ईश्वर के अनन्त नाम ओ३म् तथा ओंकार आदिक हैं। किसी एक नामका जप नियमपूर्वक करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त सदा "हरि ओ३म् तत्सत्" का चिन्तन करना चाहिए और सर्वव्यापक ईश्वर को हर स्थान में व्याप्त जानते हुए उसके परमानन्द में मग्न रहना चाहिए। इस प्रकार सर्वव्यापक ईश्वर की प्रेमभक्ति-सम्पादन का नाम अपरा भक्ति है।

अपराभक्ति-सम्पादन से प्रेमोन्मुखी वृत्ति हो जाती है, अर्थात् अन्तःकरण की सतोगुणविषयोन्मुखी वृत्ति ईश्वर की प्रेमोन्मुखी वृत्ति में लीन हो जाती है और भक्त मनुष्य पराभक्ति अर्थात भक्तियोग साधन का अधिकारी हो जाता है।

अंक ५—जैसे नदी का जल गंगाजल में तदाकार, तद्रूप हो जाता है, वैसे ही जीवात्मा के परमात्मा में तदाकार, तद्रूप होने को पराभक्ति अर्थात् भक्तियोग कहते हैं।

प्रकरण सं० ५ में कहा जा चुका है कि जैसे महाकाशरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय सर्वात्मा है, वैसे ही मेघाकाश रूप परमात्मा तथा जलाकाश रूप जीवात्मा शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय, सर्वात्मा है।

जीवात्मा के चिदाभास को चाहिए कि अपने नदी-जलरूप जीवात्मा को गंगा जलरूप परमात्मा में तदाकार, तद्रूप कर के "परमात्मा शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय, सर्वात्मा है," इस भाव का श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा अनुभव और साक्षात्कार करे, ऐसा करने से वह ज्ञानयोग-साधन का अधिकारी हो जावेगा।

भक्तियोग सिद्धि से परे की सिद्धि, दूसरी शैली से, श्रीमद्भगवद्गीता के सातवें अध्याय के अन्त में है। इस सिद्धि का

तात्पर्य;यह है कि आत्मा सच्चिदानन्द तथा परमात्मा सच्चिदा-नन्द और आदियज्ञ, आदिदेव, अध्यात्मा, आदिभूत वासुदेव-स्वरूप है, अर्थात् वासुदेवस्वरूप परमात्मा सच्चिदानन्द अपने आप है। इसके द्वारा परमभक्त परमात्मा अनुभवगम्य ज्ञान का साक्षात्कार करते हैं।

भक्तियोग का साधन

"परमात्मा शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय, सर्वात्मा है"—जिज्ञासु श्रवण, मनन, निध्यासन द्वारा इसका अनुभव करे।

अंक ६—भक्तियोग, राजयोग के साधन में विशेष अन्तर नहीं है। राजयोग-साधन में जीवात्मा का चिदाभास अपने स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय, सर्वात्मा-सम्बन्धी अनुभव कर श्रवण, मनन, निद्धयासन द्वारा साक्षात्कार करता है। उसका साधन निम्नलिखित है—"मैं शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय, सर्वात्मा हूँ" जिज्ञासु इसका श्रवण मनन, निद्धायासन द्वारा अनुभव करे तो वह ज्ञानयोग साधन का अधिकारी हो जावेगा।

इसी राजयोग को अवधूतगीता के तीसरे अध्याय के ७ वें, ९ वें श्लोक में और चौथे अध्याय के १२ वें १३ वें, श्लोक में कहा है—

संविद्धि सर्वकरणानि नभोनिभानि
संविद्धि सर्वविषयांश्च नभोनिभांश्च।

संविद्धि चैकममलं न हि बन्धमुक्तं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ७ ॥

पदच्छेद

संविद्धि, सर्वकरणानि, नभोनिभानि, संविद्धि,
सर्वविषयान, ५, नभोनिभान्, च, संविद्धि,च,
एकम, अमलम, न, हि, बन्धमुक्तम,
ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः अहम् ॥

पदार्थ

सर्वकरणानि=संपूर्ण करणों को, कृत्यों को	अमलम्=शुद्ध मल से रहित
नभोनिभानि=आकाश के तुल्य शून्य	बंधमुक्तम — बन्ध और मोक्ष जिसमें नहीं हैं सो आत्मा
संविद्धि=तू सम्यक् जान	ज्ञानामृतम् = ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
च=और	समरसम्—एकरस
सर्वविषयान=संपूर्ण विषयोंको	गगनोपमः—आकाशवत्
एकम्=एक आत्मा को	अहम्—मैं ही हूँ

पदच्छेद

निष्कर्म कर्म दहनो ज्वलनो भवामि।
निर्दुःखदुः खदहनो ज्वलनो भवानि।
निर्देह देह दहनो ज्वलनो भवामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ८ ॥

निष्कर्मकर्मदहनः, ज्वलनः, भवामि, निर्दुःखदुःखदहनः; ज्वलनः, भवामि, निर्देहदेहदहनः, ज्वलनः, भवामि ज्ञानामृतम्, समरसम, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थ

अहम—मैं	भवामि=मैं हूँ
निष्कर्मकर्म-दहनः — कर्मों से रहित हूँ तब भी कर्मों का दाहक	निर्देहदेह-दहनः — देह से रहित हूँ तब भी देह जलाने वाला मैं हूँ
ज्वलनः=अग्नि	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत हूँ
भवामि=मैं हूँ	समरसम्=एकरस हूँ
निर्दुःखदुः-खदहनः — मैं दुःखसे रहित हूँ तब भी दुःख का दाहक	गगनोपमः=गगन की उपमा-वाला
ज्वलनः=अग्नि	अहम्=मैं हूँ

न चास्ति देहो न च मे विदेहो
बुद्धिर्मनो मे न हि चेन्द्रियाणि ।
रागो विरागश्च कथं वदामि
स्वरूप निर्वाण मनामयोऽहम् ॥ १२ ॥

पदच्छेद

न, च, अस्ति, देहः, न, च, मे, विदेहः बुद्धिः, मनः, मे, न, हि, च, इन्द्रियाणि, रागः, विरागः, च, कथम्, वदामि, स्वरूप निर्वाणम्, अमानयः, अहम् ॥

पदार्थ

मे=हमारा	रागः=पदार्थों में राग
देहः=शरीर	च=और
न च अस्ति=नहीं है	विरागः=विराग
मे=हम	कथम्=किस प्रकार
विदेह=देह से रहित	वदामि=मैं कथन करूँ
न च=नहीं हैं	स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तरूप
च=और	अनामयोऽहम्=रोग से रहित मैं हूँ।
इन्द्रियाणि=इन्द्रिय भी	
मे न च=मेरे नहीं हैं	

उल्लेख मात्रं न हि भिन्नमुच्चैरुल्लेखमात्रं न तिरोहितं वै।
समासममित्रकथं वदामि स्वरूपनिर्वाण मनामयोऽहम् ॥ १३ ॥

पदच्छेद

उल्लेखमात्रम्, न, हि; भिन्नम्, उच्चै ! उल्लेखमात्रम्, न तिरोहितम्, वै, समासमम्, मित्र, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः अहम् ॥

पदार्थ

उल्लेखमात्रम्=किञ्चिन्मात्र भी जीव ब्रह्म का	मित्र=हे मित्र।
भिन्नम्=भेद	समासमम्=सम असम
नहि=नहीं है	कथम्=कैसे
उच्चैः=बड़े भारी	वदामि=मैं कहूँ क्योंकि

उल्लेखमात्रम्=उल्लेखमात्र कर के भी		स्वरूप-निर्वाणम्	स्वरूप से मुक्त
तिरोहितम्=छिपा हुआ		अनामयो-ऽहम	रोग से रहित मैं हूं
न वै=वह नहीं है			

अंक ७—प्रकरण सं० ५ के अनुसार आत्मा सर्वमय सर्वात्मा है। इसलिए वह (आत्मा) निर्गुण सगुण ब्रह्म सर्वरूप अपने-आप है। साथ ही जीवात्मा जलाकाशरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अर्थात आत्मा है। अंक ६ के अनुसार जीवात्मा सर्वमय सर्वात्मा है। इसलिए जीवात्मा का स्वरूप आत्मा निर्गुण सगुण सर्वरूप अपने-आप है।

अनुभवगम्य राजयोग ज्ञान का साधन निम्नलिखित है—

"मैं शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द निर्गुण सगुण ब्रह्म सर्वरूप अपने आप हूँ।"

जिज्ञासु को चाहिए कि श्रवण, मनन, निध्यासन द्वारा अनुभवगम्य ज्ञान का साक्षात्कार करे।

अंक १—आदि स्थूल सूक्ष्म सृष्टि के पूर्व जीवात्मा का चिदाभास सुषुप्ति अवस्था के अनुसार अज्ञान से आवृत था, जिससे चिदाभास के सामने कर्त्ता, करण, कर्म; ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेय; भोक्ता, भोग, भोग्य; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य आदि परिस्थिति अपने आप स्वयंसिद्ध नहीं थी। आदि स्थूल सूक्ष्म सृष्टि के पश्चात चिदाभास के सामने कर्त्ता, करण, कर्म; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; भोक्ता, भोग, भोग्य, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, आदि परिस्थिति

अपने आप उपस्थित हुई और वह जाग्रत अवस्था को प्राप्त हुआ। सुषुप्ति अवस्था और जाग्रत अवस्था की संधि में जाग्रत अवस्था ही की तरह स्वप्नावस्था अपने-आप है।

जैसे नाटक के पात्र यथार्थ मनुष्य और सीनरी विकृति रूप पदार्थ ईश्वर-रचित हैं वैसे ही जाग्रत अवस्था में करण कर्म; ज्ञान, ज्ञेयः भोग, भोग्य, दर्शन, दृश्य, ईश्वर रचित हैं; और जैसे बोलता सिनेमा के तमाशे में पात्र और सीनरी के चित्र का बिम्ब पड़ता है और सिनेमा का तमाशा नाटक के तमाशे ही सा प्रतीत होता है, वैसे ही स्वप्नावस्था में करण, कर्म; ज्ञान ज्ञेय; भोग, भोग्य, दर्शन, दृश्य, जाग्रत अवस्था के ज्ञान का स्मृतिरूप चित्र है। स्वप्नावस्था का करण, कर्म आदिक ईश्वररचित अथवा जीवरचित नहीं है, तो भी स्वप्नावस्था में जाग्रत अवस्था ही की तरह व्यक्तिगत प्राणी, मनुष्य, सिंह आदिक और सृष्टि का दृश्य प्रतीत होता है।

अंक २—हर एक व्यक्तिगत प्राणी को अनुभव है कि प्रत्येक दिवस जाग्रत अवस्था और के पश्चात सुषुप्तिअवस्था; सुषुप्ति अवस्था के पश्चात जाग्रत अवस्था होती है। कभी २ किसी दिवस संयोगवश स्वप्नावस्था होती है, जो सुषुप्ति अवस्था के पश्चात् और जाग्रत अवस्था के पूर्व, अर्थात् सुषुप्ति अवस्था और जाग्रत अवस्था की संधि में होती है। इससे सिद्ध है कि स्वप्नावस्था के करण, कर्म; ज्ञान, ज्ञेय; भोग, भोग्य; दर्शन, दृश्य ईश्वररचित अथवा जीवरचित नहीं हैं।

अंक ३—सुषुप्ति अवस्था में अन्तःकरण चतुर्थ वृत्ति सहित पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, अज्ञान अर्थात् कारणशरीर में लीन रहते हैं, और स्वप्नावस्था के कारण शरीर के बाहर अन्तःकरण में ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय लीन रहते हैं, अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय द्वारा मनोवृत्ति बाहर नहीं होती है। इस कारण जाग्रत अवस्था की अपेक्षा स्वप्नावस्था में अन्तःकरण का प्रकाश विशेष रूप से होता है। स्वप्नावस्था में जाग्रत के जो करण, कर्म; ज्ञान, ज्ञेय; भोग, भोग्य; दर्शन, दृश्य की ज्ञान-स्मृति स्वयं चिदाभास में, और संस्कार-स्मृति मनोवृत्ति में स्थित रहती है, उसको चिदाभास अन्तःकरण के प्रकाश द्वारा अज्ञानशक्ति के परदे पर अनुभव करता है। यह ठीक वैसा ही है जैसे तमाशे में बोलता सिनेमा के पात्रों का एकत्र होकर काम करना, सड़कों पर बायसिकिल और मोटर का चलना, तालाबों में लोगों का स्नान करना, पानी का छिड़काव होना, इमारतों और जंगलों का दृश्य आदि छोटे से काले परदे पर हम लोगों को प्रतीत होता है। स्पष्ट है कि जाग्रत अवस्था में स्वप्नावस्था का अत्यन्त अभाव है।

अंक ४—ईश्वर-रचित करण, कर्म; ज्ञान, ज्ञेय; भोग, भोग्य; दर्शन, दृश्य में "इदं, अहं, मम, त्वम्" नहीं है, अर्थात् इदं= यह इसका पुत्र, धन आदिक है, वह उसका पुत्र, धन आदिक है; अहं=मैं स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर हूँ, मैं राजा हूं, मैं पापी हूँ, मैं पुण्यात्मा हूँ, मैं निर्धन हूँ, मैं विद्वान् हूँ, आदिक; मम=

मेरा शरीर है, मेरा पुत्र है, मेरी स्त्री है, मेरा धन दौलत है, आदिक; त्वम्=तेरा शरीर है, तेरा पुत्र है, तेरी स्त्री है, तेरा धन दौलत है आदिक।

उक्त "इदं, अहं, मम, त्वम्" को स्वप्नावस्था के अनुसार जीवात्मा के चिदाभास ने मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में स्त्री, पुत्र आदिक भावों से और कार्यब्रह्म रूप पदार्थों में विषयभावों से, अन्तःकरण के प्रकाश द्वारा अज्ञान शक्ति के परदे पर स्वयं अपने आप रचा है। जैसा कि अन्यत्र कह आये हैं, इसको मनोराज जीव सृष्टि कहते हैं।

"इदं, अहं, मम, त्वम्" अर्थात मनोराज जीव सृष्टि के कारण राग-द्वेष होता है, राग-द्वेष से पाप-पुण्य कर्म होता है और पाप-पुण्य कर्म से आवागमन, दुःख-सुख होता है। राग, द्वेष, अहंता ममता के कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, आशा, तृष्णा आदि का विकास होता है, जिससे अत्यंत मानसिक कष्ट होता है। इस प्रकार मनोराज जीव सृष्टि में आवागमन तथा बन्धन और दुःख का कारण है।

अंक ५—ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञादि है। ईश्वर की सर्वज्ञता के कारण सृष्टि की ज्ञान-स्मृति स्वयं सिद्ध थी। इसलिए ईश्वर ने चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता के अधिष्ठान में करण, कर्म; ज्ञान, ज्ञेय; भोग, भोग्य; दर्शन, दृश्य आदि की रचना माया के प्रकाश द्वारा माया की अनन्त शक्तियों के परदे पर की। किन्तु आदि स्थूल, सूक्ष्म सृष्टि कार्य और उनके

उपादान कारण का मूल कारण 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म सत्ता है। इसलिए जैसे भूषण में सोना ओतप्रोत है, अर्थात् सोने से भिन्न भूषण कुछ नहीं है, वैसे ही समष्टि और व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म, कारणशरीर में 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता ओतप्रोत है, अर्थात कारण और कार्य 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वर-सृष्टि-कार्यरूप-बन्धन का कारण नहीं है, बल्कि कारण, कार्य में ब्रह्म-भाव के विपरीत भावना बन्धन और दुःख का कारण है। कारण और कार्य में ब्रह्मभाव के विपरीत भावना की अत्यन्त निवृत्ति ज्ञानयोग के साधन से होती है।

इदं, अहं, मम, त्वम् के अत्यन्त अभाव के सम्बन्ध में दूसरी शैली से अवधूतगीता के पहिले अध्याय के ६२ वें ६३ वें श्लोक में कहा है—

न ते च माता च पिता च बन्धु—
न ते च पत्नी न सुतश्च मित्रम्।
न पक्षपातो न विपक्षपातः
कथं हि संतप्तिरियं हि चित्ते ॥६२॥

पदच्छेद

न, ते, च, माता, च पिता, च, बन्धुः, न, ते, च, पत्नी, न सुतः, च, मित्रम्, न पक्षपातः न विपक्षपातः, कथम् हि संतप्तिः इयम्, हि, चित्ते ॥

पदार्थ

ते=तुम्हारी
माता=माता
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
पिता=पिता भी नहीं है
च=और तुम्हारा
बन्धुः=भाई, संबन्धी भी
न=नहीं है
च=और
ते=तुम्हारी
पत्नी=स्त्री भी
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
सुतः=पुत्र भी
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
मित्रम्=मित्र भी
न=नहीं है
पक्षपातः=पक्षपाती भी तुम्हारा कोई
न=नहीं है
विपक्षपातः=विपक्षपाती भी
न=तुम्हारा नहीं है
हि=निश्चय पूर्वक
चित्ते=चित्त में
इयम्=यह
संतप्तिः=संताप
कथम्=कैसे करते हो

दिवानक्तं न ते चित्ते उदयास्तमयौ न हि ।
विदेहस्य शरीरत्वं कल्पयन्ति कथं बुधाः ॥ ६३ ॥

पदच्छेद

दिवानक्तम्; न; ते; चित्ते; उदयास्तमौ; न; हि;
विदेहस्य; शरीरत्वम्; कल्पयन्ति; कथम् बुधाः ॥

पदार्थ।

ते=हे शिष्य, तुम्हारे	न हि=तुम्हारा नहीं है
चित्तो=चेतन में	विदेहस्य—देह से रहित का
दिवानक्तम्=दिन और रात्रि भी	शरीरत्वम्—शरीर
न=वास्तव में नहीं हैं और	बुधाः—बुद्धिमान्
उदयास्तमयौ=उदय और अस्त भी	कथम्—कैसे
	कल्पयन्ति—कल्पना करते हैं

अष्टम प्रकरण

ज्ञानयोग-साधन तथा अनुभवगम्य ज्ञान

वेदान्त के सिद्धान्त अत्यन्त कठिन और गम्भीर हैं, इसलिए प्रथम क, ख, ग सिद्धान्त का वर्णन यहां किया जाता है। श्रवण, मनन द्वारा इसका ध्यान और लक्ष्य करने से जिज्ञासु को वेदान्त के अधिक गहन सिद्धन्तों को हृदयङ्गम करने में सुविधा होगी।

(क) जैसे आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी और पृथिवी से विकृतिरूप पदार्थ उत्पन्न होकर आकाश में समाविष्ट हैं, वैसे ही शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से मूलमाया तथा मूलाज्ञान अर्थात पराप्रकृति, पराप्रकृति से अपराप्रकृति (क्रम २ से आकाश, वायु. अग्नि जल, पृथिवी) तथा अपरा प्रकृति से विकृति रूप अनन्त पदार्थ उत्पन्न होकर ये सब शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में समाविष्ट हैं, अर्थात् परमात्मा जीवात्मा की उपाधि समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में समाविष्ट है।

हम कह आये हैं कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द को मूलब्रह्म कहते हैं, परा प्रकृति तथा समष्टि और व्यष्टि कारण-शरीर को कारणब्रह्म कहते हैं, अपरा प्रकृति और विकृतिरूप

अनन्त पदार्थों तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म शरीर को कार्यब्रह्म कहते हैं। इस प्रकार मूलब्रह्म, कारणब्रह्म कार्यब्रह्म से युक्त ब्रह्माण्ड और पिण्ड का नाम ओ३म तथा ओंकार है, संसार नहीं है। यहां। यह प्रश्न होता है कि संसार क्या है? इस का उत्तर यह है भ्रान्तिज्ञान के कारण मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त-व्यक्तिगत प्राणियों में स्त्री पुत्र आदिक, और कार्यब्रह्मरूप पदार्थों में विषयमयी जो विपरीत भावना है उसका नाम ससार है। इसलिए संसार न सत्य है, न असत्य है।

(ख) १—हम यह भी बता आये हैं कि जैसे पृथिवी से विकृतिरूप अनन्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं, और वे सब क्रम २ से पृथिवी में लीन हो जाते हैं, वैसे ही शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदा-नन्द से परा प्रकृति, पराप्रकृति से अपरा प्रकृति, अपरा प्रकृति से विकृति रूप अनन्त पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, और क्रम २ से वे सब शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में लीन हो जायँगे। इसलिए सब ब्रह्म है। (देखो प्रथम प्रकरण, अंक १)

यह भी बताया जा चुका है कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिद नन्द निर्विशेष चेतन है, ईश्वर, जीव विशेष चेतन है और परा प्रकृति, अपरा प्रकृति तथा विकृति रूप अनन्त पदार्थ सामान्य चेतन है, अर्थात् सब चेतन ही चेतन है। (प्रथम प्रकरण, अंक ४ ख, ग)

इसी प्रकार वह व्याख्या भी की जा चुकी है कि स्वरूप लक्षण से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द ने सदा एकरस परिपूर्ण

रहते हुए, तटस्थ लक्षण से अधिष्ठान रूप होकर चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता से परा प्रकृति, अपरा प्रकृति तथा विकृति रूप अनन्त पदार्थों में अनन्त रूप, अनन्त गुण, अनन्त स्वभाव, अनन्त शक्ति, कर्म परिवर्तन के धर्म से युक्त करके पृथक २ धारण किया है, इसलिए शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वमय, सर्वात्मा है। (देखो पंचम प्रकरण)

(ग) शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सदा एकरस परिपूर्ण है। जैसे दीवाल पर तसवीरें दीवाल से पृथक् कुछ भी नहीं हैं, किन्तु दीवाल चित्र के साथ हो या चित्र से रहित हो, सदा एकरस है, वैसे ही जो निर्गुण और सगुण ब्रह्म चिदाकाश शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है वह चिदाकाश रूपी दीवाल पर परा प्रकृति, अपरा प्रकृति, विकृति रूप अनन्त पदार्थ चिदाकाश से पृथक् कुछ भी नहीं है, और जो निर्गुण, सगुण ब्रह्म चिदाकाश शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है, वह परा प्रकृति आदिक के होने और न होने से अप्रभावित, सदा एकरस है।

जैसे समुद्र और तरङ्ग में जल एकरस है, वैसे ही शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और परा प्रकृति, अपरा प्रकृति, विकृतिरूप अनन्त पदार्थ में चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता एकरस है। इसलिए सब ब्रह्म है।

अंक १—वेदान्त का सिद्धान्त है कि जो 'अस्ति-भाति-प्रिय' है, वह ब्रह्म है।

'अस्ति' 'होने' को, 'भाति' प्रकटता को और प्रिय "प्रियता" को कहते हैं, अर्थात जिसमें अस्तित्व हो, जो प्रकट हों, जिसमें प्रियता हो, उसको ब्रह्म कहते हैं।

प्रथम प्रकरण में वर्णन किया जा चुका है कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से मूलमाया हुई, उससे मूलाज्ञान अर्थात परा प्रकृति हुई, परा प्रकृति से अपरा प्रकृति हुई, अर्थात प्रथम आकाश हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथिवी हुई। अपरा प्रकृतिरूप पृथिवी से विकृति-रूप अनन्त पदार्थ हुए।

शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द "है"—ऐसा जो बोध होता है उसको अस्तित्व अर्थात् होना कहते हैं; शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द "सच्चिदानन्द है" ऐसा जो प्रकट होता है उसको 'भाति' अर्थात् "प्रकटता" कहते हैं; इसी प्रकार शुद्ध चेतन पर-ब्रह्म सच्चिदानन्द सर्व का "आत्मा है"; इसलिए शुद्ध चेतन पर-ब्रह्म सच्चिदानन्द में "प्रियता" है, अर्थात् वह प्रिय है। इससे सिद्ध हुआ कि शुद्धचेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मरूप है।

पराप्रकृति "पराप्रकृति है" ऐसा जो बोध होता है, उसको अस्तित्व अर्थात् 'होना' कहते हैं. परा प्रकृति में गुण, शक्ति आदिक हैं, ऐसा जो प्रकट होता है, उसको 'भाति' अर्थात् 'प्रकटता' कहते हैं; परा प्रकृति स्थूल, सूक्ष्म का उपादान कारण

है, इसलिए वह प्रिय है अर्थात् उसमें "प्रियता" है। इससे सिद्ध हुआ कि पराप्रकृति 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है।

आकाश "आकाश है"—ऐसा जो बोध होता है, उसको अस्तित्व अर्थात् 'होना कहते हैं: आकाश में शब्द गुण और शक्ति आदिक है, ऐसा जो प्रकट होता है, उसको 'भाति' अर्थात् "प्रकटता" कहते हैं; आकाश सबको अवकाश देता है, इसलिए सब को प्रिय है, अर्थात उसमें "प्रियता" है। इससे सिद्ध हुआ कि आकाश 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है।

इसी प्रकार वायु, अग्नि, जल, पृथिवी में 'अस्तित्व' 'प्रकटता' "प्रियता" है। इसलिए वायु, अग्नि, जल, पृथिवी 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप हैं और आगे बढ़ कर हम देखेंगे कि इसी प्रकार पृथिवी से जितने विकृतिरूप पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, उन सब में गुण, शक्ति आदिक है। इसलिए सब पदार्थों में 'अस्तित्व' "प्रकटता" "प्रियता" है, क्योंकि हरएक पदार्थ किसी न किसी को प्रिय है। इससे सिद्ध हुआ कि सब विकृतिरूप पदार्थ 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप हैं।

जो कुछ ऊपर कहा गया है वह प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सिद्ध है। मान लिया जाय कि विकृतिरूप बरगद का एक विशाल वृक्ष है; 'वृक्ष है'—ऐसा बोध होता है, इसलिए उसमें 'अस्तित्व' है; वृक्ष में गुण, शक्ति आदिक है, इसलिए उसमें 'भाति' अर्थात् "प्रकटता" है; वृक्ष सबको प्रिय है, इस-

लिए उसमें "प्रियता" है। इससे सिद्ध हुआ कि वृक्ष 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है।

यदि वृक्ष को काट डालें और डालपत्तों से अलग करके उसे खंड खंड कर दें, तो सब सिल्ली है, ऐसा बोध होगा। उसमें सिल्ली के रूप में 'अस्तित्व' है, सिल्ली के रूप में उसमें गुण शक्ति आदिक है, इसलिए उसमें "प्रकटता" अर्थात् 'भाति' है। इसी प्रकार मनुष्य को सिल्ली प्रिय है, इसलिए उसमें "प्रियता" है। इससे सिद्ध हुआ कि, सब सिल्ली 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म-स्वरूप है।

यदि सिल्ली को फाड़कर चैला कर दिया जाय तो उसको एक नया स्वरूप प्राप्त हो जाता है। उस रूप में चैला है, ऐसा बोध होता है, इसलिए उसमें 'अस्तित्व' है। चैलों के इस नये रूप में गुण, शक्ति आदिक है, इसलिए उसमें "प्रकटता" अर्थात् 'भाति' है। इसी प्रकार चैला सबको प्रिय होता है, इसलिए उसमें "प्रियता" है। इससे सिद्ध हुआ कि चैला 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है।

यदि चैला जला दिया जाय तो राख होगा। राख है—ऐसा बोध होने से उसमें अस्तित्व है; राख में गुण, शक्ति है, इसलिए उसमें 'प्रकटता" अर्थात् 'भाति' है; राख भी किसी न किसी को प्रिय है, इसलिए उसमें प्रियता है। इससे सिद्ध हुआ कि राख 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है।

राख किसी काल में पृथिवी में लीन होगी, अर्थात् पृथिवी-

रूप होगी और हम पहले ही यह दिखा आये हैं कि पृथिवी 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है।

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से परा प्रकृति, परा प्रकृति से अपरा प्रकृति, अपरा प्रकृति से विकृतिरूप वृक्ष तथा अनन्त पदार्थ, सब 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप हैं। हमने देखा कि वृक्ष सिल्ली के रूप में, सिल्लीचैला के रूप में, चैला राख के रूप में और राख पृथिवी के रूप में लीन हुई, किन्तु चिदाकाशरूप 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप एकरस रहा।

अंक २—जो कुछ ऊपर कहा गया है, उसे जिज्ञासु सरलतापूर्वक हृदयंगम कर सके, इस उद्देश्य से इसी तत्त्व को दूसरी शैली से उपस्थित करता हूँ—

सूक्ष्म से सूक्ष्म शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है, स्थूल से स्थूल पहाड़ है। शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है—ऐसा जो बोध होता है उसे 'अस्तित्व' कहते हैं। शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में है, गुण शक्ति आदिक है—ऐसा जो प्रकट होता है उसको "प्रकटता" कहते हैं, सबका आत्मा होने से सच्चिदानन्द सब को प्रिय है, इससे उसमें "प्रियता" भी है। इससे सिद्ध हुआ कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में अस्तित्व "प्रकटता" "प्रियता" है। इसी प्रकार पृथिवीरूप पहाड़ में भी "अस्तित्व" "प्रकटता" "प्रियता" है। पहाड़ है—ऐसा बोध होने से पहाड़ में "अस्तित्व" है पहाड़ में शब्द, स्पर्श आदिक

गुण और शक्ति है, इसलिए उसमें "प्रकटता" है, इसी प्रकार पहाड़ किसी न किसी को प्रिय है, इसलिए उसमें "प्रियता" भी है। सिद्ध हुआ कि सूक्ष्म से सूक्ष्म शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और स्थूल से स्थूल पहाड़ में "अस्तित्व" "प्रकटता" "प्रियता" है।

सूक्ष्म से सूक्ष्म शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और स्थूल से स्थूल पहाड़ के अन्तर्गत ईश्वर, जीव, परा प्रकृति, अपरा प्रकृति, विकृतिरूप अनन्त पदार्थ हैं, और व्यक्तिगत प्राणी चींटी से ब्रह्मदेव तक भी उनके अन्तर्गत हैं, इसलिए सब में अस्तित्व "प्रकटता" प्रियता है। यहाँ यह तर्क किया जा सकता है कि क्या सर्प और सिंह भी किसी को प्रिय हो सकता है? इसका समाधान यह है कि सर्प सर्पिनीको और सिंह सिंहिनी को तथा सरकस में सरकस का तमाशा करने वाले को प्रिय है। ऐसी कोई वस्तु अथवा किसी योनि का ऐसा कोई व्यक्तिगत प्राणी नहीं है जिसमें कोई गुण स्वभाव शक्ति न हो और जो किसी को प्रिय न हो।

हर प्रकार से सिद्ध है कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और ईश्वर, जीव, परा प्रकृति, अपरा प्रकृति, विकृतिरूप अनंत पदार्थ अर्थात् कर्ता करण कर्म; ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय; भोक्ता भोग, भोग्य; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य में "अस्तित्व" "प्रकटता" "प्रियता" है।

पहले ही वर्णन हो चुका है कि वेदान्त में होने को 'अस्ति, कहते

हैं, 'प्रकटता' को 'भाति' कहते हैं, 'प्रियता' को 'प्रिय' कहते हैं। इसलिए शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और ईश्वर, जीव, परा-प्रकृति, अपरा प्रकृति, विकृतिरूप अनन्त पदार्थ अर्थात् कर्ता, करण कर्म; ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेय; भोक्ता, भोग, भोग्य, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप हैं, अर्थात् सब ब्रह्म हैं।

अङ्क ३—इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जैसे भूषण में सोना, कपड़े में तन्तु, वर्फ में पानी व्याप्त तथा ओत प्रोत है, वैसे ही परा प्रकृति, अपरा प्रकृति, विकृतिरूप अनन्त पदार्थ तथा कर्ता, करण, कर्म; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; भोक्ता, भोग; भोग्य, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य में 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता व्याप्त तथा ओतप्रोत है।

माया और विश्व होने के पूर्व शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द परिपूर्ण था, और अब भी परा प्रकृति, अपरा प्रकृति, विकृति-रूप अनन्त पदार्थ तथा कर्ता, करण, कर्म; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; भोक्ता, भोग, भोग्य; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य होने पर भी शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द एक रस परिपूर्ण है। इसलिए सिद्ध होता है कि, माया और विश्व होने के पूर्व शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदा-नन्द में 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता व्याप्त तथा ओतप्रोत थी।

जैसे समुद्र में जल ओतप्रोत है, वैसे ही शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्दमें 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता ओतप्रोत है। इस ब्रह्म-सत्ता के प्रभाव से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिनानन्द के सदा एकरस परिपूर्ण रहते हुए उससे पराप्रकृति, परा प्रकृति से अपरा प्रकृति

अपरा प्रकृति से विकृतिरूप अनन्त पदार्थ तथा कर्ता; करण, कर्म; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; भोक्ता, भोग, भोग्य; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य आदि आदिका आविर्भाव हुआ।

अंक ४—जैसे रज्जु में सर्प, सीपी में चाँदी; मृगतृष्णा में जल भ्रांतिज्ञान है, वैसे ही "इदं, अहं, मम, त्वम्" के कारण मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में स्त्री-पुत्र आदिक भाव और कार्यब्रह्मरूप पदार्थों में विषय-भाव भ्रांति-ज्ञान है। "इदं, अहं, मम, त्वम्" अविद्या तथा अज्ञान की वृत्ति है, मनोराज-जीव-सृष्टि का भाव मात्र, ज्ञान, ज्ञेय रूप है; ईश्वर सृष्टि का ज्ञान, ज्ञेय रूप नहीं है; इसलिए स्वप्न-सृष्टि और जाग्रत के मनोराज जीव-सृष्टि में कुछ भी भिन्नता नहीं है (देखो प्रकरण सं० ७)।

जब मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में और कार्यब्रह्मरूप पदार्थों में 'अस्तित्व' 'प्रकटता' और "प्रियता" बोध होने से श्रवण, मनन निध्यासन द्वारा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप का अनुभव साक्षात् होता है, तो "इदं; अहं; मम, त्वम्" के कारण जो भ्रान्तिज्ञान है, उसकी अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है; जैसे रज्जु, सीपी, मृगतृष्णा के ज्ञान से सर्प, चाँदी, जल-सम्बन्धी भ्रान्तिज्ञान की निवृत्ति हो जाती है।

अंक ५—भूषण में सोने से भिन्न भूषण के ज्ञान को अध्यास कहते हैं। सोने में भूषण अध्यस्त है; इसलिए सोने को अधिष्ठान कहते हैं; वैसे ही ईश्वर; जीव; परा प्रकृति आदिक

में 'अस्ति-भाति-प्रिय'-ब्रह्मस्वरूप से भिन्न ज्ञान को अध्यास कहते हैं; 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप में ईश्वर, जीव, परा-प्रकृति आदिक अध्यस्त है; इसलिए 'अस्ति-भाति-प्रिय' को अधिष्ठान कहते हैं।

जैसे भूषण को तथा भूषण के ज्ञान को सोने और सोने के ज्ञान से अद्वैत सम्बन्ध है, और सब भूषणों में केवल सोना साक्षात् अनुभवगम्य है, वैसे ही मूलब्रह्म, कारणब्रह्म को और उनके ज्ञान को 'अस्ति-भाति-प्रिय'-ब्रह्मस्वरूप और इनके ज्ञान से अद्वैत सम्बन्ध है; और शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द तथा परमात्मा; जीवात्मा अर्थात् मूलब्रह्म; मूलमाया तथा मूलाज्ञान, अर्थात् कारणब्रह्म; अपरा प्रकृति और विकृतिरूप पदार्थ, अर्थात् कार्यब्रह्म, में केवल 'अस्ति भाति-प्रिय'-ब्रह्मस्वरूप साक्षात् अनुभवगम्य है।

अंक ६—प्रकरण (सं० १ के अंक ४ ख) में कहा गया है कि मूलब्रह्म के कारण दुःख; आनन्द, उल्लास है; इसलिए वह चिदाभास को अपने आप अनुभव होता है। कारणब्रह्म में गुण, स्वभाव, शक्ति है; किन्तु शब्द, स्पर्श, रूप, रस; गन्ध नहीं है; इसलिए कारणब्रह्म के गुण, स्वभाव, शक्ति का केवल बुद्धि-द्वारा चिदाभास को अनुभव होता है; इसके विपरीत कार्यब्रह्म में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध है; साथ ही स्वभाव, शक्ति, कर्म है; इसलिए कार्यब्रह्म ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धि द्वारा चिदाभास को अनुभव होता है (देखो प्रकरण सं० १ के अंक ४ ख में)।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म का जो 'अस्ति-भाति-प्रिय'-ब्रह्मस्वरूप है, वह चिदाभास को कैसे अनुभव होगा ? इसका उत्तर यह है कि चिन्तन दो प्रकार का है, पहिला व्यवहारिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करके चलने वाला चिन्तन है; दूसरा परमार्थिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करके चलने वाला चिन्तन है। इसी प्रकार चिन्तन के परिणाम स्वरूप निश्चय की भी दो श्रेणियाँ हैं। जैसे पहिला चिन्तन व्यवहारिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करता है और दूसरा परमार्थिक ज्ञान की ओर। वैसे ही निश्चय की पहली श्रेणी व्यवहारिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करने वाली है और दूसरी परमार्थिक ज्ञान की ओर।

जिसमें रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म हो और जिसका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता हो, वह व्यवहारिक वस्तु है और उसका ज्ञान व्यवहारिक-ज्ञान है। किन्तु मूलब्रह्म में रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म नहीं है; इसलिए मूलब्रह्म व्यवहारिक वस्तु नहीं है और उसका ज्ञान व्यवहारिक ज्ञान नहीं है; मूलब्रह्म स्वयं परमार्थस्वरूप है और उसका ज्ञान परमार्थिक ज्ञान है।

यद्यपि मूलब्रह्म परमार्थस्वरूप है और उसका ज्ञान परमार्थिक ज्ञान है; तथापि मूलब्रह्म अर्थात् आत्मा देह से रहित रहता हुआ भी देह-सहित है। इसलिए सुषुप्ति अवस्थामें कारणशरीररूप मूलाज्ञान में और जाग्रत अवस्था में सूक्ष्मशरीररूप अन्तःकरण में आत्मा का आभास-आनन्द होता है। उस आभास-आनन्द का

अनुभव चिदाभास स्वयं करता है और न तो वह परमार्थ स्वरूप है और न उसका ज्ञान परमार्थिक ज्ञान है। व्यवहारिक-वस्तु-मूलाज्ञान-और-अन्तःकरण में आभास-आनन्द होता है; इसलिए आभास-आनन्द का ज्ञान व्यवहारिक ज्ञान है।

व्यवहारिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करने वाले निश्चय से मूल-ब्रह्म के कारण जो दुःख, आनन्द, उल्लास होता है वह चिदाभास को स्वयं अनुभव होता है। व्यवहारिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करने वाले निश्चय से कारणब्रह्म का रूप, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म केवल बुद्धि द्वारा चिदाभास को अनुभव होता है। इसी प्रकार व्यवहारिक ज्ञानकी ओर लक्ष्य करने वाली ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धिद्वारा चिदाभास को अनुभव होता है। किन्तु चिदाभास को केवल परमार्थिक ज्ञानकी ओर लक्ष्य करने वाले निश्चय से मूल ब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म ये तीनों ही 'अस्ति-भाति-प्रिय'-ब्रह्म-स्वरूप अनुभव होते हैं।'

जिज्ञासु को चाहिए कि वह ज्ञानयोग के साधन का श्रवण, मनन निद्धयासन द्वारा अवलम्बन करके ऐसा अभ्यास करे कि केवल परमार्थिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करनेवाले निश्चय से चींटी से ब्रह्मदेव तक मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त समस्त व्यक्तिगत प्राणी तथा मूलब्रह्म, कारणब्रह्म और कार्यब्रह्म 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप हैं—यह साक्षात् हृदयंगम और अनुभव-गत हो।

उक्त ज्ञानयोग-साधन की प्रणाली इस प्रकार है—मूलब्रह्म,

कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म तथा चींटी से ब्रह्मदेव तक मूलब्रह्म, कारणब्रह्म कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप हैं, अर्थात् सब सम हैं, परमार्थस्वरूप हैं।

इसी तात्पर्य को अवधूत गीता के पाँचवें अध्याय के १२ वें, १३ वें श्लोक में और छठें अध्याय के छठें श्लोक में दूसरी शैली से कहा है :—

न गुणागुण पाशनिवन्ध इति।
मृतजीवन कर्म कराति कथम्।
इति शुद्ध निरञ्जन सर्वसमम्
किमु रोदिपि मानस सर्वसमम ॥१२॥

पदच्छेद

न, गुणागुणपाशनिवन्धः, इति, मृत जीवन कर्म करोति, कथम, इति, शुद्ध निरञ्जन सर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः

गुणागुणपाशनिवन्धः = गुणऔर निर्गुण विपयक पाशका संवंध उसको	कथम् = किस प्रकार हो सकता है
न = नहीं है	शुद्धनिरञ्जन-सर्वसमम् = वह शुद्धनिरञ्जन सर्व में सम है तव फिर
इति = इस प्रकार	किमु = क्यों ?
मृतजीवन कर्म = मरण और जीवन के कर्म को	मानस = हे मन !
	रोदिषि = तू रुदन करता है
करोति इति = करता है वह	सर्वसमम् = वह सब सम है

इह भावविभावविहीन इति
इह कामविकाम विहीन इति ।
इह बोधतमं खलु मोक्षसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १३॥

पदच्छेद

इह भावविभावविहीनः इति, इह काम विकाम विहीनः इति, इह बोधतमम् खलु मोक्षसमम्, किमु मानस रोदिषि सर्वसमम् ॥

पदार्थ

इह—यहाँ वह चेतन	बोधतमम्—ज्ञानस्वरूप है
भावविभाव-विहीन } भाव अभाव से हीन है	खलु—निश्चयपूर्वक
इति—इसी प्रकार	मोक्षसमम्—मोक्षस्वरूप जो है उसके लिये
इह—यहाँ वह चेतन	किमु—किस वास्ते
कामविकाम-विहीन } काम और काम के अभाव से रहित है	मानस—हे मन
	रोदिषि—तू रुदन करता है
इति—इसी प्रकार	सर्वसमम्—यह सब सम है

यदि सारविसारविहीन इति ।
यदि शून्यविशून्यविहीन इति ।
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं
प्रथमं च कथं चरमं च कथम् ॥६॥

पदच्छेद

यदि, सारविसारविहीनः इति, यदि शून्यविशून्य-विहीनः इति, यदि च एकनिरन्तरसर्वशिवम् प्रथमम् च कथम् चरमम् च कथम् ॥

पदार्थ

यदि	यदि वह ब्रह्म	एक निरन्तर सर्वशिवम्	किन्तु वह एक निरन्तर सर्व कल्याणरूप है
सारविसार विहीनः	सार और विसार वस्तु से रहित है	प्रथमम्	तब फिर आदि
इति	इस प्रकार वेद कहता है	कथम्	(उसमें) कैसे
यदि	वह चेतन	च	और
शून्यविशून्य-विहीनः	शून्य से और शून्य के अभाव से भी रहित है	चरमम्	अन्त (उसमें)
इति	इस प्रकार शास्त्र कहता है	कथम्	कैसे हो सकता है

अंक ७—ब्रह्मांड में जो परमात्मा है उसके अध्यात्म-विचार युक्त-व्यवहारिक ज्ञान में तीन विभाग हैं; पहिला स्वरूप दूसरा चिदाभास, तीसरा प्रकृति, इसी प्रकार पिंड में जो जीवात्मा है, उसके व्यवहारिक ज्ञान में तीन विभाग हैं, पहिला स्वरूप दूसरा चिदाभास तीसरा प्रकृति। इनमें से (१) स्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है: (२) चिदाभास ईश्वर, जीव है और (३) प्रकृति, समष्टि और व्यष्टि स्थूल. सूक्ष्म कारणशरीर।

किन्तु परमार्थिक ज्ञान की ओर लक्ष्य करने वाले निश्चय से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द, ईश्वर, जीव तथा समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्यरूप है, अर्थात् सब ब्रह्म है, परमार्थस्वरूप है।

अंक ८—संकल्प-निर्विकल्प समाधि के अभ्यास के संबन्ध में प्रकरण सं० १ के अंक ४ (ख) में चर्चा की गयी है।

जिज्ञासु को चाहिए कि वह ज्ञानयोग के साधन का श्रवण मनन, निद्धयासन सहित अवलम्बन करके अनुभवगम्य ज्ञान का साक्षात्कार करे।

संकल्प-समाधि द्वारा उक्त अनुभवगम्य ज्ञानका अभ्यास इस प्रकर करना चाहिए-निर्गुण, सगुणब्रह्म चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सचिदानन्द अपने आप है।

इसी प्रकार निर्विकल्प समाधि द्वारा अनुभवगम्य ज्ञान का संस्कार इस प्रकार करना चाहिए—चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सचिदानन्द अपने आप है।

ब्रह्माण्ड में परमात्मा और पिंड में जीवात्मा मूलब्रह्म (अर्थात निर्गुण ब्रह्म) कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म (अर्थात् सगुण ब्रह्म) से युक्त है। इसलिए चींटी से ब्रह्मदेव तक हर एक प्राणी निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म से युक्त है। इस कारण हरएक प्राणी "निगुण ब्रह्म," सगुण ब्रह्म चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है।

जिज्ञासु को चाहिए कि संकल्प समाधि और निर्विकल्प समाधि के अभ्यास द्वारा इस अनुभवगम्य ज्ञान का विकास करे कि मैं ही चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप शुद्ध सच्चिदानन्द चेतन परब्रह्म अपने आप हूँ।

अंक ६—अनुभवगम्य ज्ञान का जो निरूपण इस ग्रन्थ में किया गया है उसका सारांश नीचे दिया जाता है। संकल्प समाधि द्वारा यह अभ्यास करना चाहिए कि निर्गुण-सगुण ब्रह्म चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है। इसी प्रकार निर्विकल्प समाधि द्वारा यह अभ्यास होना चाहिए कि चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है।

श्रीमद्भगवद्गीता में यही विषय किंचित परिवर्त्तित रूप में है, अर्थात् संकल्प-समाधि द्वारा यह अभ्यास करना चाहिए कि निर्गुण, सगुण ब्रह्म वासुदेवस्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है। और निर्विकल्प समाधि द्वारा यह अभ्यास होना चाहिए कि वासुदेवस्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है।

अवधूतगीता के अनुसार संकल्प-समाधि द्वारा यह अभ्यास करना चाहिए कि निर्गुण, सगुण ब्रह्म सर्वरूप शुद्ध चेतन

परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है। इसी प्रकार निर्विकल्प समाधि द्वारा यह अभ्यास होना चाहिए कि सर्वरूप शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द अपने आप है।

जिज्ञासु को चाहिए कि इन चारों शैलियों की विशेषताओं को हृदयंगम कर ले।

नवम प्रकरण

सगुणब्रह्म साकार होकर भी निराकार है

अंक १—जैसे समुद्र में तरङ्ग है वैसे ही परमात्मा में समष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर हैं और जीवात्मा में व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर है। किन्तु व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर से समष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर विलक्षण है (देखो प्रकरण सं० १ का अंक ८)।

समष्टि-स्थूल शरीर के अंशरूप पृथिवी से जीवात्मा के चिदाभास भोक्ता के भोग्यरूप अन्न, फल मेवे आदिक उत्पन्न होते हैं और उनसे व्यष्टि स्थूल शरीर की रक्षा होती है। जीवात्मा के चिदाभास की जब तक मुक्ति नहीं होती है तब तक कर्मानुसार जो अनेक योनियों में व्यष्टि स्थूल शरीर का परिवर्तन होता रहता है, उसके अवलम्बन के लिए पहिले अन्न से वीर्य बनता है और तब वह पिता द्वारा माता के गर्भ में प्रविष्ट होकर स्थूल शरीर की उत्पत्ति करता है; दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि व्यष्टि स्थूल शरीर की उत्पत्ति पृथिवी से होती है। जब तक नवप्राप्त योनि का स्थूल शरीर रहता है, तब तक उसकी रक्षा अन्न से होती है और अन्त में वह पृथिवी में लय हो जाता है।

ब्रह्मज्ञान के प्रभाव से जिस पुरुष की मुक्ति हो जाती है, अर्थात् विदेह हो जाने से जिसके स्थूल शरीर का त्याग हो जाता है, उसका व्यष्टि स्थूल शरीर समष्टि स्थूल शरीर में, व्यष्टि सूक्ष्म शरीर समष्टि सूक्ष्म शरीर में और व्यष्टि कारणशरीर समष्टि कारणशरीर में लय होता है। इसी प्रकार धीरे २ जब सब असंख्य पुरुषों की विदेह मुक्ति हो जायगी और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म कारणशरीर समष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर में लय हो जायँगे तो अन्त में समष्टि स्थूल शरीर समष्टि सूक्ष्म शरीर में, समष्टि सूक्ष्म शरीर समष्टि कारणशरीर में और समष्टि कारण शरीर परमात्मा अर्थात् शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में लय होगा। इसलिए सूक्ष्म विचार से, सगुण साकार होकर भी निराकार है।

इस तात्पर्य को दूसरी शैली से अवधूतगीता के पहिले अध्याय के ६१ वें श्लोक में कहा है—

साकारं च निराकारं नेति नेतीति सर्वदा।
भेदाभेदविनिर्मुक्तो वर्त्तते केवलः शिवः ॥६१॥

पदच्छेद

साकारम्, च, निराकारम्:, न इति, न इति, इति सर्वदा, भेदाभेदविनिर्मुक्तः, वर्तते, केवलः शिवः ॥

पदार्थ

साकारम् = स्थूल	सर्वदा = सर्व काल
च = और	भेदाभेद विनिर्मुक्तः } भेद और अभेद से रहित
निराकारम् = सूक्ष्म जितना है	केवलः = केवल
इति न = यह सब नहीं है	शिवः = कल्याणरूप ही
इति = इस प्रकार श्रुति कहती है	वर्तते = वर्तता है

दशम प्रकरण

"तत्", "त्वं" का शोधन और अनुभवगम्य ज्ञान का साक्षात्कार

वेद का महावाक्य "तत" "त्वं" शब्द है। "तत्" ईश्वर-वाचक है, और "त्वं" जीववाचक है, अर्थात् तत् का वाच्यार्थ समष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर आदि उपाधि सहित परमात्मा है और 'त्वं' का वाच्यार्थ व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, आदि कारणशरीर उपाधि सहित जीवात्मा है।

"तत्" "त्वं" के लक्ष्यार्थ भाग त्याग के अनुसार इस प्रकार है कि ब्रह्माण्ड और पिण्ड में जो परमात्मा, जीवात्मा है उसके, व्यवहारिक ज्ञान की दृष्टि से तीन विभाग हैं: (१) स्वरूप; (२) चिदाभास; (३) प्रकृति (देखो प्रकरण (सं० १ के अंक ४ ख)।

'तत्' 'त्वं' के वाच्यार्थ में चिदाभास और प्रकृति का भाग-त्याग होने से लक्ष्यार्थ परमात्मा, जीवात्मा का स्वरूप केवल शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द है (देखो प्रकरण सं० १ का अंक ३)।

किन्तु 'तत, 'त्वं' के वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से परे जो केवल परमार्थ स्वरूप है, वह नीचे अंक १ में ब्रह्मविद्या के अनुसार है

अंक २ में वेदान्त के अनुसार है, अंक ३ में अध्यात्मविद्या के अनुसार है और अंक ४ में विज्ञान के अनुसार है।

अंक १—शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द से समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर क्रम २ से उत्पन्न हुए हैं और अन्त में वे क्रम २ से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द में लीन होजायँगे; इसलिए सब ब्रह्म है।

अंक २—शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द और समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है, इसलिए सब ब्रह्म है।

अंक ३—स्वरूपलक्षण से शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द ने सदा एकरस परिपूर्ण रहकर तथा तटस्थ लक्षण से चेतन तथा अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मसत्ता का अधिष्ठानरूप होकर समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर में अनन्त रूप, अनन्त गुण, अनन्तस्वभाव, अनन्त शक्ति, कर्म परिवर्तनके धर्म से युक्त करके धारण किया है, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द सर्वरूप अपने आप है। इसलिए सब ब्रह्म है।

अंक ४—शुद्ध चेतन परब्रह्म सच्चिदानन्द निर्विशेष चेतन है; ईश्वर, जीव विशेष चेतन है; समष्टि और व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर सामान्य चेतन है, अर्थात् सब चेतन ही चेतन है। इसलिए सब ब्रह्म है।

अङ्क १ से अङ्क ४ तक के तात्पर्य को दूसरी शैली से अव-

धूतगीता में पाँचवें अध्याय के १७वें श्लोक में और षष्ठ अध्याय के ७वें श्लोक में इस प्रकार कहा है—

इह सर्वसमं खलु जीव इति।
इह सर्वनिरन्तर जीव इति।
इह केवल निश्चल जीव इति।
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम ॥१॥

पदच्छेद

इह, सर्वसमम्, खलु, जीवः, इति, इह, सर्वनिरन्तरजीवः, इति, इह, केवलनिश्चलजीवः, इति, किमु, रोदिषि, मानस; सर्वसमम् ॥

पदार्थ

इह=इस संसार में
खलु=निश्चयपूर्वक
सर्वसमम्=सबसे उत्तम
जीव=जीव है
इति=इस प्रकार
इह=इस संसार में
सर्वनिरन्तरजीवः=सर्व के निरंतर जीव ही है
इति=इस प्रकार
केवल निश्चलजीवः=केवल निश्चल जीव ही है फिर
इति=इस प्रकार
किमु=किस वास्ते
मानस=हे मन
रोदिषि=तुम रुदन करते हो
सर्वसमम्=यह सब सम है

यदि भेदविभेदनिराकरणं
यदि वेदकवेद्यनिराकरणम्।

यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं
तृतीय च कथं तुरीयं च कथम् ॥७॥

पदच्छेद

यदि, भेदविभेदनिराकरणम्, यदि, वेदकवेद्यनिराकरणम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, तृतीयम्, च, कथम्, तुरीयम् च, कथम्,

पदार्थ

यदि	=जब कि वह चेतन	एकनिरन्तर-सर्वशिवम्	=वह एकरस, सर्वत्र और कल्याणपूर्ण है।
भेदविभेद-निराकरणम्	=सामान्यविशेष भेद से रहित है		
यदि	=जब कि वह		
वेदकवेद्य-निराकरणम्	=ज्ञाता ज्ञेय के व्यवहार से भी रहित है	तृतीयं च	=तीसरा
		कथम्	=कैसे और
		तुरीयं च	=चतुर्थ
यदि च	=यदि च	कथम्	=कैसे

अंक ५—केवल ब्रह्मज्ञान की सिद्धि तथा उसके अनुभवगम्य-ज्ञान के साक्षात्कार से मुक्ति होना सम्भव है। तो भी ब्रह्मज्ञान के अतिरिक्त आत्मज्ञान की सिद्धि तथा उसका अनुभवगम्य ज्ञान का साक्षात्कार होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए जिज्ञासु को ब्रह्मज्ञान तथा आत्मज्ञान की सिद्धि प्राप्त करके उनका अनुभवगम्यज्ञान साक्षात्कार करना चाहिए।

इस प्रकरण के अंक २ और अंक ४ का तात्पर्य यह है कि "केवल चेतन भरपूर है", या "केवल 'अस्ति-भाति-प्रिय' ओतप्रोत

है।" क्योंकि आत्मा-अनात्मा, अर्थात् निर्गुण-सगुण ब्रह्म, चेतन भरपूर है, या आत्मा-अनात्मा, अर्थात् निर्गुण सगुण ब्रह्म, में 'अस्ति-भाति-प्रिय' ओतप्रोत है। इसलिए आत्मा-अनात्मा, अर्थात् निर्गुण-सगुण ब्रह्म, सब चेतन तथा 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्म-स्वरूप हैं।

अङ्क १ और अङ्क ३ का तात्पर्य यह है कि "केवल चेतनात्मा है" या "केवल ब्रह्मात्मा है"; क्योंकि, आत्मा से भिन्न निर्गुण, सगुण ब्रह्म कुछ भी नहीं है। इसलिए आत्मा निर्गुण, सगुण ब्रह्म सर्वरूप अपने-आप है।

यथार्थ में आदि, अन्त में सगुणरूप-रहित केवल आत्मा अपने-आप है। किन्तु मध्य में सगुणरूप-सहित आत्मा है, अर्थात, मध्य में आत्मा निर्गुण रहते हुए सगुण भी है। निर्गुण रूप से आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, सगुण रूप से आत्मा केवल चेतन स्वरूप है और निर्गुण सगुण में व्यापक है। इसलिए परमार्थिक ज्ञान के निश्चय से जो आत्मा निर्गुण, सगुण सर्वरूप अपने आप है, वह "केवल चेतनात्मा है" या "केवल ब्रह्मात्मा है।"

जिज्ञासु को यह स्मरण रखना चाहिए कि जैसे ब्रह्माण्ड में परमात्मा निर्गुण सगुण ब्रह्म से युक्त है, वैसे ही पिण्ड में जीवात्मा निर्गुण, सगुण ब्रह्म से युक्त है। इसलिए परमार्थिक ज्ञान के निश्चय से चींटी से ब्रह्मदेव तक निर्गुण, सगुण ब्रह्म से युक्त

प्राणी मात्र "चेतन भरपूर है", या 'अस्ति-भाति-प्रिय' ब्रह्मस्वरूप है" तथा "चेतनात्मा है" या "ब्रह्मात्मा" है।

अतः अनुभवगम्य ज्ञानके साक्षात्कार के निमित्त निम्नलिखित भाव का अभ्यास करना चाहिए।

(१) "केवल चेतन भरपूर है" या "केवल 'अस्ति-भाति-प्रिय' ओतप्रोत है।"

(२) "केवल चेतनात्मा है" या "केवल ब्रह्मात्मा है।"

एकादश प्रकरण

परमार्थिक ज्ञान की जाग्रति में चार अवस्थाएँ और निमित्त, नित्य अवतारिक और सहजिक जीवनन्मुक्त पुरुष ।

अंक १—मनुष्य के अतिरिक्त जितने प्राणी हैं, उन सब की परमार्थिक ज्ञान की जाग्रति में सुषुप्ति अवस्था है और जीवन्मुक्त पुरुष के लिए सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत, और तुरीयावस्था नहीं है, क्योंकि कर्म करते हुए और कर्म नहीं करते हुए सदा उसका एकरस परमार्थिक ज्ञान जाग्रत है; किन्तु परमार्थिक ज्ञान के निश्चय के कारण परमार्थिक ज्ञान की जाग्रति में मनुष्य मात्र की सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत, तुरीया चार अवस्थाएँ हैं ।

जिस मनुष्य को ईश्वर, जीव, प्रकृति का ज्ञान किसी प्रकार से नहीं है, और जिसको तूलाज्ञान के कारण मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में स्त्री पुत्र आदिक भाव है और कार्यब्रह्म रूप पदार्थों में विषय भाव है, उस मनुष्य के परमार्थिक ज्ञान की जाग्रति-सुषुप्ति अवस्था है ।

जिस मनुष्य को तूलाज्ञान के कारण मूलब्रह्म, कारणब्रह्म, कार्यब्रह्म से युक्त व्यक्तिगत प्राणी में स्त्री, पुत्र आदिक भाव और कार्यब्रह्म रूप पदार्थों में विषय-भाव है, किन्तु मूलाज्ञान के कारण चेतन ब्रह्म से भिन्न ईश्वर, जीव प्रकृति भाव भी है, उस मनुष्य की परमार्थिक ज्ञान की जाग्रति में स्वप्नावस्था है ।

जिस मनुष्य को यथार्थ बोध होकर चेतन ब्रह्म से अभिन्न ईश्वर, जीव, प्रकृति का ज्ञान है उसकी परमार्थिक ज्ञान की जाग्रति में जाग्रत अवस्था है।

जिस पुरुष को परमार्थिक ज्ञान के निश्चय के कारण परमार्थिक ज्ञान की सिद्धि प्राप्त होगई है, उसकी, परमार्थिक ज्ञान की जाग्रति में, तुरीयावस्था है।

अंक २—जीवन्मुक्त पुरुषों का व्यवहार अनिर्वचनीय है, क्योंकि वे भोग-विभोग अर्थात् विहित भोग और अहित भोग से और सब द्वन्द्वों से रहित हैं तथा सब कर्म करते हुए, और नहीं करते हुए भी समाधि में स्थिर हैं। बाहरी व्यवहार से जीवन्मुक्त पुरुषों में कोई ऐसा चिन्ह नहीं है जिससे पहचाना जावे कि वे जीवन्मुक्त हैं अथवा नहीं हैं।

जैसे समुद्र की गहराई और गम्भीरता विलक्षण है; किसी ने समुद्रकी गहराई और गम्भीरता को नहीं जाना, वैसे ही जीवन्मुक्त पुरुषोंके लक्षणमें इतनी गहराई तथा गम्भीरता है कि उसे जानना असम्भव है।

गीता आदिक में जीवन्मुक्त पुरुषों का जो लक्षण लिखा है, वह केवल जिज्ञासु के बोध के लिए लिखा है; उसका उद्देश्य केवल यही है कि जिज्ञासु को बोध हो जावे कि यथार्थ में परमार्थिक ज्ञान की सिद्धि पूर्ण हो गई, या अपूर्ण है।

अंक ३—निमित्त अवतारिक, नित्य अवतारिक और

सहजिक जीवन्मुक्त पुरुषों का व्यवहार, प्रत्यक्ष प्रमाण से पृथक् २ अनुभव होता है।

श्री रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम महाराज दशरथ का वचन मानकर चौदह वर्ष वन में रहे, रावण से युद्ध करके उन्होंने विजय प्राप्त की और वन से अयोध्या को लौट आकर राज का काम किया।

परमात्मा श्रीकृष्ण महाभारत के युद्ध में अर्जुन के सारथी हुए और कंस आदिक का विधंस करके उन्होंने अन्त में राज का काम किया।

स्वामी श्री शंकराचार्य ने मन्डन मिश्र से शास्त्रार्थ करके विजय प्राप्त की और ज्ञान-विज्ञान की फिर से स्थापना करके उसे लोप होने से बचा लिया।

राजा जनक जीवन के अन्त तक राज का काम करते रहे; इसी प्रकार श्री वसिष्ठ महाराज ने पुरोहताई और उपदेश देने का काम किया।

उक्त उदाहरणों से सिद्ध होता है कि हर एक जीवन्मुक्त पुरुष का व्यवहार, गुण, स्वभाव, शक्ति, कर्म पृथक २ होना सम्भव है।

अंक ४—निमित्त, नित्य अवतारिक जीवन्मुक्तों का व्यवहार सहजिक जीवन्मुक्त पुरुषों के व्यवहार से विलक्षण बोध होता है। सहजिक जीवन्मुक्त पुरुषों का व्यवहार और गुण, स्वभाव, शक्ति तथा प्रारब्ध-वेग एक सा होना सम्भव नहीं है।

जीवन्मुक्त पुरुषों की वार्ता अवधूतगीता के पहिले अध्याय के ७३, ७५ वें श्लोक में और दूसरे अध्याय के ३७ वें, ३९ वें श्लोक में इस प्रकार कही गयी है—

त्रितयतुरीयं नहि नहि यत्र।
विन्दति केवलमात्मनि तत्र।
धर्माधर्मौ नहि नहि यत्र।
बद्धो मुक्तः कथमिह तत्र॥७३॥

पदच्छेद

त्रितयतुरीयम्, नहि, नहि, यत्र, विन्दति केवलम्, आत्मनि, तत्र, धर्माधर्मौ, नहि, नहि, यत्र, बद्धः मुक्तः, कथम्, इह, तत्र॥

पदार्थ

तत्र=जिस जीवन्मुक्ति-अवस्था में
त्रितय तुरीयम्=जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरीया यह चारों
नहि नहि=नहीं है, नहीं है
तत्र=उसी जीवन्मुक्ति की अवस्था में
आत्मनि=आत्मा में ही
केवलम्=ब्रह्मानन्द को ही
विंदति=फिर पाता है
यत्र=जिस जीवन्मुक्ति की अवस्था में
धर्माधर्मौ=धर्माधर्म भी
नहि नहि=नहीं है, नहीं है
तत्र=उस अवस्था में
बद्धः=यह बद्ध है
मुक्तः=यह मुक्त है
इह=यहाँ
कथम्=यह व्यवहार कैसे हो सकता है?

विन्दति विन्दति नहिनहि मंत्र।
छन्दो लक्षणं नहि नहि तंत्रम्।
समरसमग्नो भावितपूतः।
प्रलपितमेतत्परमवधूतः ॥ ७४ ॥

पदच्छेद

विन्दति, विन्दति, नहि, नहि, मन्त्रम्, छन्दः, लक्षणम्, नहि, नहि, तन्त्रम, समरसमग्नः, भावितपूतः प्रलपितम, एतत परम अवधूतः ॥

पदार्थ

समरस मग्न = आत्मरस में जो मग्न है	छन्दः = छन्द
भावित पूतः = जो चित्त से शुद्ध है	लक्षणम् = रूप
अवधूतः = अवधूत है	तन्त्रम = तंत्र को
मन्त्रम् = मन्त्र को	नहि नहि = नहीं लभता है, नहीं लभता है
विन्दति = लभता है	एतत = इस
नहि नहि = नहीं लभता है नहीं लभता है।	परम् = परब्रह्म को ही
	प्रलपितम् = कथन करता है

सुसंयमी वा यदि वा न संयमी
सुसंग्रही वा यदि वा न संग्रही।
निष्कर्मको वा यदि वा सकर्मक
स्तमीशमात्मा नमुपैति शाश्वतम ॥३७॥

पदच्छेद

सुसंयमी, वा, यदि, वा, न, संयमी, सुसंग्रही, वा, यदि, वा, न, संग्रही, निष्कर्मकः, वा, यदि, वा, सकर्मकः, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम ॥

पदार्थ

सुसंयमी = ज्ञानवान सुष्टु संयम वाला हो।
वा = अथवा
न संयमी = संयमवाला न हो
यदि वा = अथवा
सुसंग्रही = सुष्टु संग्रह करनेवाला हो
यदि वा = अथवा
न संग्रही = संग्रह करने से रहित हो
वा = अथवा
निष्कर्मकः = कर्म से रहित हो
यदि वा = अथवा
सकर्मकः = कर्म के सहित हो
तम् = उसी
ईशम् = ईश्वर
शाश्वतम् = नित्य
आत्मानम् = आत्मा को
उपैति = ज्ञान प्राप्त हो जाता है

विधौ निरोधे परमात्मतां गते ।
न योगिनश्चेतसि भेदवर्जिते ।
शौचं न वाऽशौचमलिङ्गभावना ।
सर्वं विधेयं यदि वा निषिध्यते ॥३६॥

पदच्छेद

विधौ, निरोधे, परमात्मतां, गते, न, योगिनः, चेतसि, भेदवर्जिते, शौचम, न, वा, अशौचम्, अलिङ्गभावना, सर्वम्, विधेयम्, यदि, वा निषिध्यते ।

पदार्थ

भेदवर्जिते=भेद से रहित
परमात्मतांगते=परमात्मता को प्राप्त
योगिनः=योगी के
चेतसि=चित्त में
विधौनिरोधे=विधि और निरोध
न भवतः=नहीं होते हैं
शौचम्=पवित्रता
वा=अथवा
न अशौचम्=अपवित्रता भी नहीं होती है और
अलिंगभावना=चिन्ह की भावना भी नहीं होती है।
यदि वा=अथवा
सर्वम्=सम्पूर्ण
विधेयम्=विधेय का भी
निषिध्यते=निषेध हो जाता है

सुषुप्ति अवस्था और तुरीयावस्था में अन्तर इतना ही है कि अनुभवगम्य-ज्ञान-रहित जिस अनुभव में जगत्का अभाव है, वह सुषुप्ति अवस्था है और अनुभवगम्य ज्ञान-सहित जिस अनुभव में जगत्का अभाव है, वह तुरीयावस्था है।

जिज्ञासु को यह जानने की इच्छा होगी कि तुरीयावस्था कैसे प्राप्त हो सकती है। इसके तीन उपाय हैं, जो क्रमशः तीनों लिखे जाते हैं। प्रकरण सं १ के अंक ३ ख में और अंक ११ ख में जो परमार्थिक ज्ञान और परमार्थिक ज्ञान से अभिन्न व्यवहारिक ज्ञान का वर्णन किया गया है, उसके चिन्तन और ग्रहण से मूलाज्ञान-गत सहजिक व्यवहारिक ज्ञान तूलाज्ञान तथा गत प्रपञ्चिक ज्ञान का त्याग होगा। उनका त्याग होने से जगत की प्रतीति का अभाव होगा।

प्रकरण सं० ८, अंक ८,९ में जो अनुभवगम्य ज्ञान का

वर्णन है, उसका अभ्यास-द्वारा साक्षात्कार करने से तुरीयावस्था प्राप्त होगा।

प्रकरण सं० १० के अंक ५ में जो अनुभवगम्य ज्ञान का स्पष्टीकरण किया गया है और अनुभवगम्य ज्ञानके साक्षात्कार की जो विवेचना लिखी गयी है, उसका अत्यन्त अभ्यास होने से तुरीयावस्था प्राप्त होगी।

हरि ॐ शान्तिः ! शान्तिः